संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

श्री सिद्धकृपा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

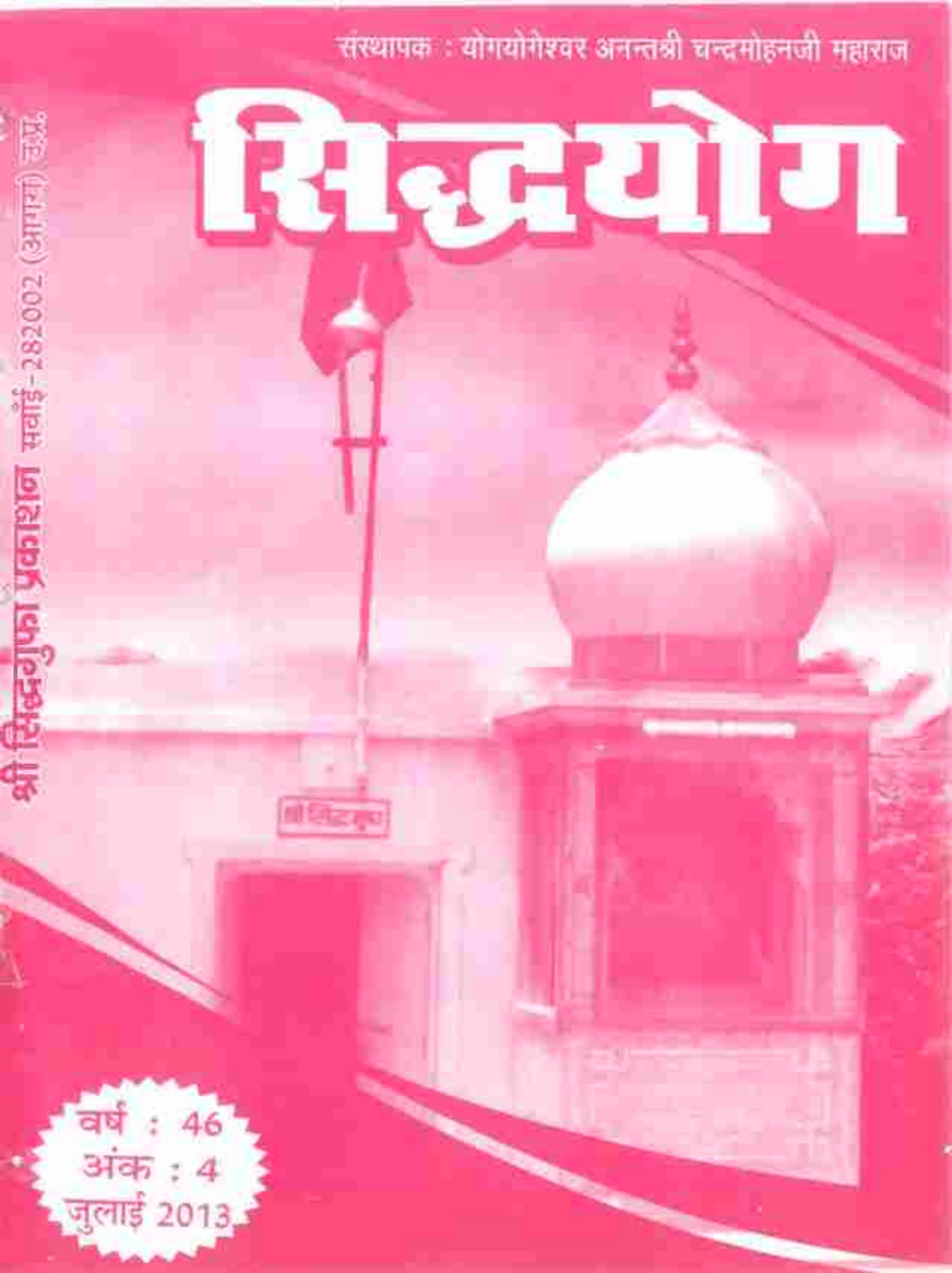

वर्ष : 46
अंक : 4
जुलाई 2013

अमृत कण

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्।।

सुख–दुःख का कर्ता व्यक्ति स्वयं ही होता है, ऐसा समझकर कल्याणकारी मार्ग का ही अवलम्बन लेना चाहिए, फिर भयभीत होने की कोई बात नहीं।

• • •

हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः।
रजोमोहावृतात्मानः प्रियमेव तु लौकिकाः।।

परीक्षक – विवेकीजन (सारासारविचारद्वारा) ठीक–ठीक परीक्षा करके हितकर मार्ग का सेवन करते हैं, परंतु रजोगुण और तमोगुण से आवृत बुद्धि वाले लौकिक मनुष्य (हिताहित का विचार न करे तत्काल) प्रिय (मालूम होने वाले आचार आदि) का सेवन करते हैं (इसलिए दुःखी होते हैं)।

• • •

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्।।

सम्पूर्ण प्राणियों की सभी चेष्टाएँ सुख– प्राप्त करने के लिए ही होती हैं और वह सुख बिना धर्माचरण के प्राप्त हो नहीं सकता, अतः धर्म में परायण रहना चाहिए।

• • •

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि।।

अरे मूर्ख (मनुष्य)! क्या तुम मृत्यु से डर रहे हो? डरे हुए को क्या मृत्यु छोड़ देती है? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको काल का ग्रास बना देती है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसी को नहीं पकड़ती है। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े।

• • •

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 46 जुलाई - 2013 अंक : 4

अरा इव स्थनाभौ संता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमान।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्।।

मुण्डकोपनिषद् 2/2/6

रथ की नाभि में जुड़े हुए अरों की भाँति जिसमें समस्त देहव्यापिनी नाड़ियाँ एकत्र स्थित है, उसी हृदय में वह बहुत प्रकार से उत्पन्न होने वाला यह अन्तर्यामी परमेश्वर मध्य भाग में रहता है। इस सर्वात्मा परमात्मा का ओम् इस नाम के द्वारा ही ध्यान करो। अज्ञानमय अंधकार से अतीत तथा भवसागर से अन्तिम तटरूप पुरुषोत्तम की प्राप्ति के लिए साधन करने में तुम लोगों का कल्याण हो।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 7
3. श्री गुरु पूर्णिमा : श्री सद्गुरु तत्व – अनिल कुमार सिंह 10
4. श्री गुरुदेव के चरण कमल... – श्री ऋषिराम 13
5. जब गुरु जी-दरोगा बने – जगदीश राए बंसल 18
6. सद्गुरु से योग दीक्षा ... – प्रेम विहारी त्रिपाठी 21
7. भगवत्कृपा / गुरु कृपा – प्रो. ऋषिराम शर्मा 24
8. योग आसन – उत्थित पद्मासन 28
9. श्री गीतामृत पदावली 29
10. स्वरूप की विस्मृति से ही.... 32
11. महाप्रभु श्री रामलाल जी... – अवनीश भटनागर 34
12. श्री मद्भागवत में योग परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह 37

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

विभूतिपाद की विभूतियाँ

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

भिन्न-भिन्न समयों पर 'सिद्धयोग' में प्रकाशित होने वाले हमने अपने लेखों में यह भली-भाँति समझाने का प्रयत्न किया है कि सिद्धियों का आधार संयम है। संयम सिद्ध हो जाने पर ही योगी को सकल सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। योग दर्शन के विभूतिपाद में भगवान पतंजलि देव ने जिन-जिन सिद्धियों का जिक्र किया है वे सब संयम पर आधारित हैं। इससे पहले कि मैं सिद्धियों का वर्णन करूँ **'संयम'** का अर्थ समझा देना परमावश्यक है। संयम की परिभाषा लिखते हुए भगवान पतंजलिदेव अपने एक बहुत छोटे सूत्र में लिखते हैं।

त्रयमेकत्र संयमः।।

इस सूत्र पर श्री व्यास भाष्य की पंक्तियाँ निम्नांकित हैं –

एक विषयाणि त्रीणि साधानानि संयम इत्युच्चते तदस्य त्रयस्य।

अर्थात् धारणा ध्यान समाधि तीनों साधनों का एक लक्ष्य में लक्षित हो जाना ही संयम की सही परिभाषा है। इस बात को इस प्रकार से समझ लेना चाहिए। जैसे एक नया साधक ज्योंही योगाभ्यास करना आरम्भ करता है उसके सामने पहला लक्ष्य रहता है **धारणा** को सिद्ध करना। साधक धारणा को सिद्ध करने को कोई अभ्यास आरम्भ करता है तो धारणा के लक्षीभूत किसी एक देश को अपने चिन्तन का आधार बनाता है। धारणा का लक्षण भी बतलाते हुए भगवान पतंजलि देव ने लिखा है –

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

अर्थात् – किसी एक लक्ष्य में अपने चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। इस सूत्र पर भी श्री व्यासदेव जी धारणा की परिभाषा समझाते हुए धारणा स्थलों का निर्देश इस प्रकार करते हैं –

नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाऽग्रइत्येव
मादिषु देशेषु, वाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृतिमात्रेणवन्ध इतिधारणा।

अर्थात्– जिस समय साधक धारणा का अभ्यास करना आरम्भ करे तब वह मन के चिन्तन से ही धारणा के लक्ष्य को केन्द्रित करे और योगाचार्यों के अनुभूत स्थान नाभिचक्र, हृदयकमल, मूर्धाज्योति नासिकाग्र, जिह्वाग्र, जिह्वामूल आदि-आदि हैं। जिस समय कोई भी योगी साधक उपरोक्त धारणा स्थलों को लक्षित केन्द्र बनायेगा तो वहाँ सब दृश्य धीरे

उसके सामने आने लगा, एवं उसका सर्वाधिक मन धारणा स्थल में एकाग्र हो जायेगा। धारणा का फल है मन की ताकत का बढ़ जाना। भगवान् पतंजलि देव स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं –

धारणासु योग्यता मनसः।

धारणा मन को ध्यान करने लायक बल दे देती है। किन्तु अभ्यासी साधक को धारणा के विषय में सफलता लाभ करने के लिए यह याद रखना चाहिए कि वह धैर्य को न छोड़े। यह किस प्रकार का कोर्स है। यदि साधक इसको परिपक्व कर डालेगा तो आगे की भूमिकाओं में उसकी कुछ भी प्रयास करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। भगवान पतंजलिदेव इसके बारे में निर्देश करते हैं कि –

सतु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़–भूमि।।

अर्थात् एक अभ्यास को परिपक्व करने के लिए उसको लम्बे समय तक करते ही रहना चाहिए। ताकि वह परिपक्वता पा जाये और यह भी परमावश्यक है कि उस अभ्यास में अभ्यास करने वाले साधक की परिपक्व निष्ठा हो अर्थात् उस ही साधन को अपना उत्कृष्ट लक्ष्य बनावे। साधक के प्रति साधक के मन में आदर बुद्धि रहनी चाहिए और जिस समय अभ्यास आरम्भ करें उसको लगातार आदर पूर्वक लम्बे समय तक करता चला जाय। ऐसा करने पर ही साधक ध्यान–धारणा आदि के परिणाम को समझ सकेगा। साधक ज्यों–ज्यों धारणा के अभ्यास को परिपक्व बनाता चला जायेगा त्यों–त्यों वह धारणा ही ध्यान के रूप में बदलती चली जायेगी। धारणा का अभ्यास इतना परिपक्व हो जायेगा कि चिन्तन मात्र से ही मन धारणा में अपने आप केन्द्रित होने लगेगा। यह अभ्यास ज्योंही पूर्णता को प्राप्त हो जायेगा त्योंही वह परिवर्तित धारणा ध्यान बन जायेगी। ध्यान का लक्षण बतलाते हुए योगदर्शन में लिखा गया है –

तत्रप्रत्येकतानता ध्यानम्।

अर्थात् – धारणा के लक्षीभूत विषय में तैल धारा वत् मन का सतत् प्रवाहित होना ध्यान कहलाता है। अब पढ़िये श्री व्यास देवजी की व्याख्या –

तस्मिन देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्यय – स्यैकतानता – सदृशः प्रवाहः प्रत्यान्त रेणा परामृष्टो ध्यानम्।।

अर्थात् – लक्षित विषय में मन का विघ्न बाधा रहित लगा रहना ही ध्यान कहलाता है। विशेषता इसमें यह होगी कि साधक धारण काल में धारणा के विषय का चिन्तन मन की कल्पना से करता था। ध्यान में वही विषय रूहानी आँखों से प्रत्यक्षवत् स्पष्ट दिखाई देने लगेगा। साधक अपनी वाह्य चेतना से बिल्कुल शून्य हो जायेगा और अन्तर जगत् में लीन होकर के भीतरी दृश्यों को बराबर देखता रहेगा। योगी साधक का ध्यान जब परिपक्व हो

जायेगा तब यह ध्यान ही अपने आप उस रूहानी गुरु–परमात्मा की कृपा से समाधि रूप में बदल जायेगा। समाधि का अर्थ है –

तदेवार्थमात्र निर्भास स्वरूप शून्य मिव समाधिः।

ध्यानमेव ध्येयाकार निर्भसि प्रत्यया त्मकेनस्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते।

अर्थात् – ध्यान ही ध्येयाकार में परिवर्तित होकर समाधि का रूप धारण कर लेता है। इसमें कोई भी दूसरा प्रत्यय सामने नहीं आता। विशेषता केवलमात्र इतना ही है कि ध्यान करने वाला साधक स्वयं ध्येयाकार में बदल जाता है। जैसे किसी साधक ने श्री राम का ध्यान करना प्रारम्भ किया और वह ध्यान में दीखने लगे। कालान्तर में अभ्यास के बढ़ते–बढ़ते स्थिति इस प्रकार की सामने आ जायेगी कि साधक स्वयं को श्री राम देखने लगेगा। वह अपने बाह्य बोध को बिल्कुल भूल जायेगा और अन्तर जगत में अपने देवदत्त हरिदत्त बाह्य नामों को भूलकर अन्तर्जगत् में 'मैं राम हूँ' इसी का उसको बोध होगा। शनैः शनैः बढ़ते हुए समाधि की यह स्थिति आ जायेगी कि 'श्री राम' की सकल सिद्धियाँ उसके आगे पीछे घूमने लगेंगी और वह साधक समझने लगेगा कि यह सिद्धियाँ और की नहीं प्रत्युत मेरी अपनी हैं। श्री राम का चिन्ता करने वाले भक्तजन उसको अपने चिन्तक दिखाई देने लगेंगे। यह समाधि की सिद्धि है। इसी की तान्त्रिकी परिभाषा **संयम** कहलाती है। धारणा ध्यान और समाधि तीनों में साधक **प्रत्यान्तरेण अपरामृष्ट** विषय में ही स्थिर रहता है तो समझ लेना चाहिए कि उसको संयम हो गया। यह संयम समाधि का ही प्रत्यान्तरेण अपरामृष्ट शुद्ध रूप है। जो साधक लगातार दो या तीन वर्ष तक संयम का उत्कृष्ट अभ्यास कर लेते हैं तो समझ लेना चाहिए कि उन्होंने संयम पर जय प्राप्त कर ली। संयम पर जय प्राप्त कर लेने से समाधि प्रज्ञा स्वतः ही प्रकट हो जाती है अर्थात् उत्तरोत्तर समाधि प्रवाह स्वच्छ बहने लगता है भगवान् पतंजलिदेव लिखते हैं –

तज्जयात् प्रज्ञालोकः।

अर्थात् संयम सिद्ध हो जाने पर प्रज्ञालोक हो जाता है। या बुद्धि प्रकाश हो जाता है। पढ़िये श्री व्यासदेव जी की पंक्तियाँ–

तस्य संयमस्य जयात्समाधिप्रज्ञाया भवत्यालोकः यथा यथा संयम–स्थिरपदों भवति तथा तथा समाधि प्रज्ञा विशारदी भवति।।

अर्थात् संयम जय हो जाने पर समाधि प्रज्ञा का उत्कर्ष उत्तरोत्तर दृढ़ हो जाता है। स्थिति प्रवाह बिल्कुल निर्मल होता चला जाता है। अभ्यास के बल से जब साधक इस प्रकार की स्थिति को उपलब्ध कर लेता है और पूर्णतया समझ लेता है कि मेरा संयम सिद्ध हो चुका है तब वह उपलब्ध स्थिति वाला योगी अन्यान्य भूमिकाओं में संयम का उपयोग करे। श्री

पतंजलि ऋषि लिखते हैं –

तस्य भूमिषु विनियोगः

इस सूत्र पर व्यास भाष्य का सार इस प्रकार है – पहले–पहले योगी अपने अभ्यास बल से संयम सिद्ध करता है तो साधक के मन का लगाव उन पहली भूमिकाओं में अधिक रहता है। जिनमें अभी तक वह संयम करता रहा है क्योंकि पहली भूमिकाओं में जय प्राप्त किए बिना ज्ञान-विषयक बुद्धि का प्रकाश नहीं हो जाता कदाचित् साधक यदि ईश्वर की कृपा से उत्तर भूमियों में जय प्राप्त कर ले तो उसके बाद में निम्न श्रेणी की भूमिकाओं में उसको संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि अधः भूमियाँ जो परिवित ज्ञानादि की हैं वह तो साधक को ईश्वर कृपा से उत्तर भूमियों में जय प्राप्त कर लेने पर निम्न भूमिकायें स्वतः ही सिद्ध हो जाती हैं। साधक संयम कहाँ करेगा इसको सोचने की उसको आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि साधक के उस अपने अभ्यास में उत्तर भूमियाँ अपने आप ही प्रगट होती रहेंगी। क्योंकि योगशास्त्र का ऐसा नियम है कि **योगिनो योगएवपाध्यायः** अर्थात् योगाभ्यासी के लिए योग ही उसका गुरु बन जाता है। साधक को तो केवलमात्र इतना रह जाता है कि वह अपने अभ्यास को बाकायदा बढ़ाता चला जाय। ज्यों–ज्यों अभ्यास को बढ़ाता चला जायेगा त्यों–त्यों उस परम गुरु की कृपा से उत्तर भूमिकायें उसके सामने प्रगट होती रहेंगी। क्योंकि योगाचार्यों का मत है कि योग से योग को जाने। योग से ही योग बढ़ता है। जो प्रमाद को छोड़कर योगाभ्यास करते रहते हैं वे अवश्य ही समाधि पद को प्राप्त कर लेते हैं।

• • •

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।

(गीता 6 / 28)

जिसका मन अच्छी प्रकार शान्त है, जो प्रपञ्च से रहित है, जिसका रजोगुण शान्त हो गया है – ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को अत्युत्तम आनन्द प्राप्त होता है।

अमृत पर्व - गुरु पूर्णिमा

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

प्रति वर्ष आषाढ़ माह की पूर्णिमा को गुरु–पूर्णिमा या व्यास पूजा के रूप में यह पर्व अनादि काल से मनाया जाता है। गुरु का प्रत्येक शिष्य गुरुदेव की पूजा अर्चना व उपासना करके अपने को धन्य मानता है। जो शिष्य के हृदयस्थ अज्ञान को नष्ट कर देते हैं वे गुरु हैं। 'गीर्यते स्तूयते देवगन्धर्वादिभिरिति गुरुः' देव, गन्धर्व, सुर मुनि आदि से जो पूजे जाते हैं वे गुरु हैं। भगवान पतंजलि देव ने ईश्वर की गुरु की संज्ञा दी है क्योंकि त्रिकाल से अबाधित होने के कारण वे आदि में प्रकट होने वाले ब्रह्मादि देवों को भी ज्ञान देते हैं। गुरु पूर्णत्व के प्रतीक हैं इसलिए पूर्णिमा को उनकी पूजा की जाती है। गुरु किसी निश्चित शरीर या रूप का ही नाम नहीं है वे सर्वगत हैं, अनन्त हैं, तत्व हैं व्यापक सत्ता हैं।

गुरु गीता में श्लोक आया है –

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरञ्जनम्
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरु–ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थात् जो नित्य, शुद्ध निराभास, निराकार तथा निरंजन हैं तथा नित्यबोध स्वरूप, चेतन और आनन्दकन्द हैं उन गुरु–ब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ। इस वाक्य में गुरु को ही ब्रह्म का रूप प्रदान किया गया है। गुरु–ब्रह्म अर्थात् जो गुरु भी हैं और ब्रह्म भी। वेद का वचन है – ''आचार्यवान् पुरुषो वेद'' आचार्य वाला ही ईश्वर को जान सकता है।

गुरु गीता के ही एक अन्य श्लोक में भी गुरु का बहुत ही सुन्दर स्वरूप भगवान शिव ने दर्शाया है –

सच्चिदानन्द रूपाय व्यापिने परमात्मने।
नमः श्री गुरु नाथाय ह्यविद्याग्रन्थि भेदिने।

हे गुरुदेव आप सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। सर्वव्यापी हैं एवं परमात्मा हैं। अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले आप मेरे स्वामी को मेरा बार–बार प्रणाम है। गुरु के स्वरूप को दर्शाने वाला इससे अच्छा और कोई श्लोक नहीं मिल सकता है। सिद्धयोगी ही सद्गुरु हो सकते हैं। सद्गुरु को ईश्वर का ही रूप मानना चाहिए। श्री मद्भागवत् के एकादश स्कन्ध के सप्तम अध्याय के 27वें श्लोक में भगवान श्री कृष्ण अपने सखा उद्धव जी को उपदेश करते हुए कहते हैं –

आचार्य मां विजानीयात् नावमन्येत कर्हिचित्
न मर्त्यबुद्धयासूयेत सर्वदेव मयोगुरुः।।

हे उद्धव! शिष्य अपने गुरुदेव को मेरा ही रूप माने। गुरुदेव की कभी भी अवहेलना न करे। मरणधर्मा समझकर गुरु की कभी भी निन्दा न करे। गुरुदेव का रूप सर्वदेवमय है अर्थात् गुरुदेव के शरीर में समस्त देवों का वास रहता है। गुरुगीता में ही भगवान् शिव कहते हैं जो व्यक्ति गुरुदेव की निन्दा करता है वह जब तक सूर्य और चन्द्र हैं तब तक घोर नरक में वास करता है। जो गुरुदेव के पूजक नहीं हैं उन्हें अपने लक्ष्य की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। शास्त्र प्रमाण है।

गुरु पूजा विहीनानाम् न सिद्धिः स्यात् कदाचन।

गुरु पूजा न करने वाले को कभी भी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हुआ करती है। हमारे देश में जितने भी उच्च कोटि के भक्त या योगी हुए हैं, उन सब ने गुरु की महिमा का मुक्तकण्ठ से गान किया है। सन्त कबीर दास, तुलसीदास, मीराबाई, सहजोबाई आदि सभी भक्तों ने गुरु की महिमा गाई है और परम पद को पाया है। सन्त तुलसीदास जी कहते हैं – 'गुरुबिन भवनिधि तरई न कोई जो विरंचि शंकर सम होई।' गुरुकृपा के बिना कोई भी भवसागर को पार नहीं कर सकता चाहे वे ब्रह्मा हों या शंकर ही हों। तुलसीदास जी ने एक और रहस्य की बात लिख दी है।

श्री गुरुपद नख मणिगण ज्योति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

श्री गुरुचरणाम्बुजों के नख से निकलती ज्योति का ध्यान करने से शिष्य को दिव्य दृष्टि मिल जाती है। दिव्य दृष्टि मिल जाने पर ही ईश्वर का दर्शन संभव होता है। गुरु गीता में आया है – **'गुरु वक्त्रे स्थितं ब्रह्म लभ्यते च तत्प्रसादतः'** ब्रह्म गुरुदेव के मुख में स्थित हैं गुरु की कृपा से ही वे मिला करते हैं। अर्थात् गुरु सत्ता ही ब्रह्म सत्ता है।

प्राचीन काल से ही अध्यात्म जिज्ञासुओं को गुरुदेव के आश्रम में हाथ में समिधा आदि लेकर जाने का लेख मिलता है। गुरु श्रोत्रीय अर्थात् वेद उपनिषदों का पारंगत हो तथा योग की पूर्ण अनुभूति करके आत्मसाक्षात्कार कर लिया हो ऐसे गुरुदेव के चरणों में जाकर ब्रह्म विद्या या योग विद्या का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

शिष्य का सब प्रकार से भला–कल्याण चाहने वाला गुरु जैसा दूसरा कोई नहीं होता है। गुरुदेव अपने श्रद्धालु शिष्य के लोक व परलोक को सुधारने की कामना से सदा ही कल्याणकारी उपदेश देते हैं। गुरु के पास पहुँचने पर भी कुछ साधक संस्कारों के मन्द होने के कारण अपेक्षित उन्नति नहीं कर पाते। शिष्य में गुरुदेव के प्रति असीम भक्ति होनी चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्य के जन्म–जन्म के अन्तःकरण के मल को धोते रहते हैं इसलिए गुरुदेव को धोबी की भी संज्ञा दी जाती है।

हमारे क्षण–क्षण स्मरणीय गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज में अपने गुरुदेव श्री प्रभुजी के चरणों में जैसी भक्ति थी वह अवर्णनीय है। उनके श्वास–श्वास में प्रभुजी का गुणगान था। वे कहा करते थे – मेरे जीवन में जो भी प्रकाश है वह श्री प्रभुजी की करुणा कृपा से है। मैं तो

कड़छी का काम कर रहा हूँ। हलुआ किसी और का है मैं तो बाँट रहा हूँ।'' गुरुदेव किसी साधक को जब योग–दीक्षा देते थे तो श्री प्रभुजी के स्वरूप को अपनी छाती से लगाकर उन्हीं का पूजन कराया करते थे और कहा करते थे तुम्हारे गुरु तो यही हैं मैं तो उनकी आज्ञा से साधन–विधि बता रहा हूँ।'' वे अपने गुरुदेव के स्वरूप को हमेशा अपने साथ रखते थे। प्रवास काल में दोनों समय छोटे से स्वरूप की आरती होती थी व भोग लगाकर ही प्रसाद रूप में भोजन ग्रहण करते थे। श्री सिद्धगुफा से जब कहीं कार्यक्रम में बाहर जाते थे तो जाते समय जमीन पर लेटकर साष्टांग प्रणाम करते–करते बाहर निकलते थे। वे स्वयं प्रभुजी के रूप थे किन्तु फिर भी ऐसी भक्ति का दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। उन्होंने ही अपने शिष्यों के अन्दर श्री प्रभुजी की अटूट भक्ति के बीज बोये हैं अन्यथा श्री प्रभुजी की अगम्य महिमा को कौन जानता ?

ऐसे कृपानिकेतन गुरुदेव को पाकर हम सब धन्य हैं। वे पूर्णयोगी हैं किसी प्रकार का आडम्बर उनके जीवन में कभी नहीं रहा। अपने बच्चों के लिए कल्पतरु हैं। उनके चिन्तन मात्र से शिष्य के जीवन के सभी क्लेश दूर होते हैं।

गुरु पूर्णिमा के इस पावन बेला में उन करुणा सागर गुरुदेव के चरण कमलों में सभी शिष्यों का कोटि–कोटि नमन है।

• • •

आवश्यक सूचना

श्री सिद्धगुफा सवांई धाम में 'श्री गुरु पूर्णिमा महोत्सव' 22 जुलाई को धूम-धाम से मनाया जा रहा है। 24 जुलाई दिन बुधवार से श्री रुद्र महायज्ञ का 11 दिन का अनुष्ठान रहेगा। 3 अगस्त को यज्ञ की पूर्णाहुति होगी।

अतः सभी गुरु भाई-बहिनों से निवेदन है कि महोत्सव में सम्मिलित होकर पुण्य के भागी बनें।

जय गुरुदेव की !

सम्पादक

सिद्धयोग मासिक

श्री गुरु पूर्णिमा : श्री सद्गुरु तत्व

– अनिल कुमार सिंह ''कुँवर'', कछवा, मीरजापुर

गुरु पूर्णिमा'' अथवा व्यासपूजा हमारी आदि कालीन परम्परा चली आ रही है, जिस पर्व के दिन हम अपने 'श्री सद्गुरुदेव' के प्रति हृदय से नमन करते हैं। इस महान पुण्य पर्व पर प्रत्येक सद्गुरु शिष्य अपने श्री सद्गुरु की कृपा पाने के लिए प्रार्थना शील रहता है एवं वह आज्ञाकारी शिष्य वह उत्कंठित शिष्य उस साधना विधि को पाना अपनाना चाहता है, जिससे उसे अपने श्री सद्गुरुदेव भगवान की चेतना का सस्पर्श मिले एवं गुरु तत्व का बोध हो। जीवन के सभी लौकिक एवं पारलौकिक दायित्वों का पालन–निर्वहन करते हुए उसे श्री सद्गुरुदेव की कृपानुभूतियों का लाभ मिल सके। इन सभी कृपा प्राप्ति हेतु इस शुभ पर्व का सभी श्री गुरुभक्तों को अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

'गुरु पूर्णिमा' के पावन पर्व पर सद्गुरुभक्तों की इन तमाम आवश्यकताओं को प्राप्त करने हेतु प्राचीन ऋषियों ''गुरुगीता'' के पाठ चिन्तन, मनन को समर्थ साधना बताया है। आदि गुरु भगवान सदाशिव ने कैलाश पर्वत पर माता भगवती पार्वती जी को माध्यम बनाकर 'गुरुगीता का उपदेश दिया। जिसे भगवान वेदव्यास जी ने स्कन्दपुराण के उत्तरखण्ड में इस शिव–पार्वती संवाद को बड़े ही भावपूर्ण रीति से वर्णन किया है। जिसे इस पर्व को 'गुरु पूर्णिमा' अथवा ''व्यासपूर्णिमा'' की भी संज्ञा देते हैं। यह गुरुगीता गुरुतत्व को बोध कराने के साथ ही साथ एक गुरु के प्रति श्रद्धा का विशेष विधान भी है। आनन्दकन्द प्रातःस्मरणीय मेरे श्री सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने पूज्य श्री गुरुदेव (अखण्ड ज्योति महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) जी के जन्म दिवस के शुभ पावन पर्व पर श्री गुरुगीता का पाठ करते एवं कराते थे जो एक अपने सद्गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा परिपक्व करती है। इन सब विधान से शिष्य के प्रगाढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर श्री सद्गुरु उसकी आध्यात्मिक व लौकिक इच्छाओं को पूर्ण करते हैं।

सद्गुरु सत्ता क्या होती है? ब्रह्मा, विष्णु, महेश से आगे की जो सत्ता है वह सद्गुरु सत्ता कहलाती है। उसे ही ओम, प्रणव, ब्रह्म आदि नामों से व्यक्त करते हैं। योग दर्शन में सद्गुरु सत्ता के लिए

स पूर्वसामपि गुरु कालेनानवच्छेदात:' कहा गया है। अन्य अवच्छेदनार्थेन कालो न उपावर्तते स: गुरु:। उसी सत्ता के भय से भयादस्य अग्निस्तपति भयाद तपित सूर्य:।

अर्थात् जिस सत्ता के भय से अग्नि जलती है सूर्य तपता है वायु चलती है। यमराज आदि दौड़े फिरते हैं वह है सद्गुरु सत्ता। इसी सत्ता के स्वरूप को भगवान शिव माता पार्वती को स्पष्ट करते हुए कहते हैं –

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तत्श्रृणण्व वदाम्यहम्,
गुरुं बिना ब्रह्म नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने।।

अर्थात् हे देवि यह कहना भी तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ है परन्तु मैं इसे अवश्य कहूंगा कि सद्गुरु के सिवाय कोई ब्रह्म (अन्य उच्चतम तत्व) नहीं है हे सुमार्या ! यह सत्य है, सत्य है।

भगवान शिव के इस आदेशात्मक सत्य कि 'गुरु ही ब्रह्म है' बड़ा ही सारभूत एवं बौद्धिक क्षमता से तो नहीं किन्तु भावनाओं की गहराई से समझा जा सकता है। इस हेतु शिष्य की उमड़ती भावना एवं समर्पित प्राण की आवश्यकता होगी।

इस सम्बन्ध में एक बार अखिल ब्रह्माण्ड नायक प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ऋषिकेश आश्रम में विराजमान थे। कई ध्यानाभ्यासियों ने ध्यान में देखा कि ब्रह्मा आदि देवता ब्रह्मलोक में आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की पूजा अर्चना कर रहे हैं। इसे देखकर इन लोगों को बड़ा आश्चर्य लगा। इन लोगों ने श्री प्रभुजी से चर्चा की। उसी समय वहां एक वैष्णव महात्मा उपस्थित थे, उन्होंने कहा कि यह तो माया है। यह बात आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के यहाँ पहुँची। श्री प्रभुजी आराम कुर्सी पर विराजमान थे। वहाँ उपस्थित सभी ध्यानाभ्यासी लोगों ने प्रश्न किया कि श्री प्रभुजी यह क्या बात है? सभी देवी–देवता आपकी पूजा कर रहे थे। इस पर अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री प्रभुजी ने उत्तर देते हुए कहा – वे इसकी (अपने शरीर की ओर इंगित करते हुए) पूजा नहीं कर रहे थे, वे उसकी (ऊपर की ओर उंगली उठाकर) पूजा कर रहे थे। अर्थात् उनके कहने का तात्पर्य यह है कि यह शरीर का रूप कुछ और तथा इसके भीतर तत्व कुछ और। कल्याणधन श्री प्रभुजी के भीतर जो सद्गुरुतत्व था ,जो ब्रह्मतेज था उसी को सभी देवी–देवता नमन कर रहे थे। यह क्या था? ठीक उसी प्रकार जब अर्जुन को शंका हुई। भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी ने कहा–

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राहमनु रिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।

अर्थात् इस योग को मैंने सर्वप्रथम सूर्य को बताया था। सूर्य ने मनु को बताया। मनु ने इक्ष्वाकु राजा को बताया था। यह सुनकर अर्जुन को शंका उत्पन्न हुई कि कहाँ आज आप और कहाँ सूर्य कब का है। उसने प्रश्न किया

अपर भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः। कथं एतद्विजानीयाम त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।

अर्थात् हे भगवान आपका जन्म तो अभी हुआ और सूर्य तो सृष्टि के आदि में हुए हैं इस प्रकार से आपने उन्हें योग का उपदेश दिया, यह मैं कैसे समझूँ। तो भगवान उत्तर देते हैं –

बहुनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तपः।।

अर्थात् हे अर्जुन! मेरे, और तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन्हें तो सिर्फ मैं ही जान सकता हूँ। किन्तु तुम नहीं जान सकते। इसी प्रकारसे ऋषिकेश आश्रम में उपस्थित सभी ऋषियों के मन में यह शंका उत्पन्न हो गई कि सारे देवी–देवता श्री प्रभुजी पर पुष्प वर्षा कर रहे हैं एवं

उन्हें नमन कर रहे हैं। यह क्या था यही वही सद्गुरु सत्ता को नमन कर रहे थे। मनुष्य की आकृति में किसका व कितना प्रकाश विद्यमान है यह वही जान सकता है जिसे वह सत्ता जनवा दे।

भगवान आशुतोष गुरु नमन की इस पावन पर्व की प्रक्रिया को आगे कहते हैं –

ज्ञान शक्ति समारूढ़स्तत्व माला विभूषितः।
मुक्ति भुक्ति प्रढाताय तस्मै श्री गुरुवे नमः।।
अनेकजन्मसंप्राप्त – सर्व कर्म विदा हिने।
स्वात्मज्ञान प्रभावेण तस्मै श्री गुरुवे नमः।।
न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्वम् ज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्री गुरुवे नमः।।
मन्नाथः श्री जगन्नाथो मदगुरु श्री जगद्गुरु।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरुवेनमः।।

अर्थात् ज्ञानशक्ति पर आरूढ़, सभी तत्वों की माला से विभूषित श्री गुरुदेव भोग एवं मोक्ष दोनों ही फल प्रदान करने वाले हैं। जो अपने आत्मज्ञान के प्रभाव से अपने सद्शिष्य के अनेक जन्मों से संचित सभी कर्मों को भस्मसात कर देते हैं। श्री गुरुदेव से बढ़कर अन्य कोई तत्व नहीं है। श्री गुरुसेवा से बढ़कर कोई तप नहीं है। उनसे बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है।

मेरे श्री गुरुदेव ही जगत के स्वामी हैं, मेरे गुरुदेव ही जगद्गुरु हैं, मेरे श्री गुरुदेव ही मेरे आत्म स्वरूप में स्थित सभी प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। ऐसे श्री सद्गुरुदेव के चरण कमल में नमन है।

सद्गुरु महिमा के सम्बन्ध में यह भगवान शिव की वाणी अपने आप में अनेकों दार्शनिक यौगिक रहस्यों को समाए हुए है। इसमें शिष्य की श्रद्धा एवं चिन्तन का सम्पूर्ण मिश्रण है। सद्गुरु से श्रेष्ठ अन्य कोई तत्व नहीं है। यह सत्य है, क्योंकि कर्म जंजालों के क्रूर कुटिल कुचक्र से सद्गुरु ही उबारने में समर्थ हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरित मानस में स्पष्ट किया है –

गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जो विरंचे सकर सम होई।।

श्री गुरुदेव के बिना कोई भी सत्ता संसार सागर को नहीं पार लगा सकती। फिर भी भले ही वह ब्रह्मा अथवा शंकर की भाँति ही समर्थ क्यों न हो। अतः सब कुछ "श्री सद्गुरु" ही है। इस पावन पर्व पर आनन्दकन्द त्रिजग पावन परम सत्ता "सद्गुरुदेव भगवान" के श्री चरणों में कोटिशः नमन!

श्री गुरुदेव के चरण कमलों के सम्पर्क की कुछ हृदयग्राही स्मृतियाँ

– श्री प्रो. ऋषिराम जी एम.ए. दिल्ली

(प्रो. ऋषिराम गुप्त दिल्ली में हिन्दू कॉलेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। गुरुदेव के लाड़ले शिष्य थे। उनकी आप बीती इस लेख में पढ़िये।)

हर मनुष्य के जीवन – पथ पर कभी–कभी ऐसे मोड़ आते हैं जहाँ अपनी बुद्धि एवं पुरुषार्थ काम नहीं करता और कोई दैविक–शक्ति ही समय तथा संस्कारानुसार हाथ पकड़ कर ठीक पथ पर चला देती है। ठीक ऐसी ही दैविक घटना मेरे अपने जीवन में 1955 में घटित हुई। कुछ पारिवारिक एवं व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण मन अतीव दुःखी रहने लगा था। आँखों में प्रायः अश्रु उमड़े रहते थे। जब स्नानार्थ मैं स्नानागार में जाता वहां एकांत पाकर घण्टा भर के लगभग रोता और फर्श पर माथा रगड़ कर प्रार्थना किया करता था : "प्रभो! रक्षा करो" यहां तक कि उस समय मेरे माथे पर तिलक की भाँति इसी रगड़ का चिन्ह भी बन गया था। मुझे क्या पता था कि 'प्रभु प्रभु' पुकार कर जो मैं प्रार्थना करता हूँ उसके फलस्वरूप वास्तव में किसी दिन श्री महाप्रभु के ही पावन चरण–कमलों में इस पतित को आश्रय मिलेगा।

अनंत श्री गुरुदेव महाराज ने एक बार फरमाया था कि जब–जब भी किसी को उत्कट जिज्ञासा हो जाती है गुरु दर्शन की सद्गुरु तब स्वयं ही उसे ढूँढ़ लेते हैं और आश्रय दे देते हैं। ठीक ऐसा ही मेरे साथ हुआ। उसी वर्ष सितम्बर मास में हिन्दू कॉलेज के कुछ नये बंगले बन कर तैयार हुए थे और इनमें से एक मुझे मिला। एक दिन शाम को मैं आगे खुले मैदान में विचारमग्न बैठा था कि सहसा मेरी दृष्टि सामने के विश्वविद्यालय मार्ग पर गई। क्या देखता हूँ कि मेरे पुराने मित्र और सखा पं. मनीराम जी, साइकिल पर जा रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व यह महानुभाव दिल्ली छोड़ कर घर लाडवा लौट गये थे और डी. ए. वी. हाई स्कूल सादाबाद के मुख्याध्यापक भी हो गये थे। मैंने उनको देखा और वे मुझे देखकर साइकिल से उतर गए। बातचीत के बीच उन्होंने बताया कि वे दिल्ली लौट आये हैं और अब फिर यहाँ ही रहेंगे। जब उन्होंने मुझसे पूछा मैं वहाँ कैसे बैठा हूँ मैंने कहा 'यह मकान मुझे मिला है।' काफी समय तक एक–दूसरे के विषय में पूछताछ होती रही। पता चला कि उनका विचार दिल्ली में एक 'योगाश्रम' स्थापित करने का है। इस पर मुझे हँसी आ गई क्योंकि वे आर्यसमाजी रहे थे और आर्यसमाज के कुतर्कवाद से मुझे सदा ही घृणा रही थी। मैं भक्ति मार्ग में विश्वास रखता था। इस पर उन्होंने कहा : नहीं, ऋषिराम जी, मैं अब आर्यसमाजी नहीं रहा।" मैं सुन कर कुछ चकित–सा हो गया। अवश्य इनके जीवन में कुछ परिवर्तनशील घटना हुई होगी जिसने इन्हें बदल दिया है। उन्होंने बताया 'मुझे एक परम योगी सद्गुरु के दर्शन हुए हैं और मैंने उनके पावन चरणों का आश्रय लिया है। अब मैं उनका ही

प्रचार करना चाहता हूँ। श्री वात्सल्य निधि सद्गुरुदेव महाराज की ही प्रेरणा रही होगी कि मैंने उनसे प्रार्थना की कि मुझे भी उनका दर्शन करने का सौभाग्य प्रदान करें। पूछा कैसे मैं दर्शन कर सकता हूँ? मैंने उनको अपना नासिक दु:ख भी बताया। उन्होंने वचन दिया कि शीघ्र ही वे मुझे अपने गुरुदेव के दर्शन करायेंगे। मेरा यह निवास स्थान दिल्ली नगर की सुविख्यात पहाड़ी के ठीक नीचे जंगल में था। एकदम एकान्त। मैंने उनसे आग्रह किया कि महाराज जब भी दिल्ली पधारें मेरी कुटिया को ही अपने पावन चरण कमलों की धूल से पवित्र करें। पंडित जी ने तुरन्त ही श्री महाराज जी को दिल्ली पधारने के लिए पत्र द्वारा आग्रह किया होगा।

इसी क्रम में एक दिन ब्रह्मचारी (अब गृहस्थी) ब्रज किशोर से भेंट हुई और उसने बताया कि श्री महाराज दो–तीन दिन में दिल्ली पधार रहे हैं। मन में हलचल उत्पन्न हो गई। मेरे जीवन में कुछ होने जाने वाला है मैंने ऐसा अनुभव किया। जिन्होंने एक आर्यसमाजी को भक्ति–मार्ग पर चला दिया उनके दर्शन होने जा रहे हैं। उत्सुकता और मनोवेग के कारण नींद भूख बन्द सी हो गई। बाहर का कमरा मैंने श्री महाराज के लिए ठीक करवा दिया और जिस प्रकार शीलनी ने राम की प्रतीक्षा की थी मैं भी उनके दर्शन की पुण्य घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन प्रात: ही ब्रजकिशोर जी दौड़े आये और कहा – 'गुरुजी आये हैं', कहाँ हैं?' मैंने पूछा। 'बाहर खड़े हैं।' मैं जैसे ही बैठा, नंगे पांव बाहर दौड़ पड़ा। बाहर टैक्सी खड़ी थी और श्री महाराज अपने सीधे–साधे भेष में एक ओर खड़े थे। मैंने सोचा था कि गुरु महाराज साधु भेष में होंगे, बड़ी–बड़ी जटाएं आदि भी होंगी। चुपके से पूछा "कहाँ हैं गुरुजी?" पंडित जी ने महाराज की ओर संकेत किया। मन जैसे डूब–सा गया। बड़ी निराशा–सी हुई। यह क्या योगी होंगे?" अपने भावों को दबा कर शिष्टाचार रूप से महाराज जी को प्रणाम किया और सत्कार सहित कमरे तक लाकर आसन पर विराजमान कराया। पंडित जी और ब्रजकिशोर की भाँति मैं भी उनके सामने नीचे बैठ गया। मुझे क्या पता था उस समय क्या होता है गुरु और क्या है उनकी महिमा। स्वयं साक्षात् प्रभु स्वयं घर पर पधारें और एक मूर्ख अज्ञानी की आँख उन्हें पहिचान भी न सके! मेरे मन में जिज्ञासा हुई थी कि किसी सद्गुरु के दर्शन हों जो शान्ति दे सकें। प्रभु से रक्षा की भीख महीनों माँगी थी। और उस जिज्ञासापूर्ति के हेतु जब स्वयं प्रभु कुटिया पर पधारे और साक्षात् वात्सल्यपूर्ण हृदय को लेकर मेरे सन्मुख विराजमान थे, मैं उनकी महिमा को जान भी न सका। यह है निपट अज्ञान जिसके कारण इस जगत के असंख्य प्राणी अज्ञानान्धार में भटक–भटक कर दु:ख पा रहे हैं।

प्रभु का शुभागमन मेरे नये जीवन की कहानी का प्रथम परिच्छेद था। यहाँ से ही जीवन में एक नया मोड़ आया। सायंकाल आरती हुई। दिल्ली निवासी श्री महाराज जी के कुछ शिष्य इसमें शामिल हुए। मैं भी औरों की देखा–देखी शामिल हुआ परन्तु मुझे कुछ बात जंची नहीं। महाराज जी दो–चार दिन मेरी कुटिया पर ठहरे। मैं कॉलेज जाता और फिर वापिस आकर श्री

चरणों में बैठ जाता। मेरे मन में जो भाव उत्पन्न होते वे उनको ही लेकर चर्चा शुरू करते और उपदेश देते। इस प्रकार चमत्कार होने लगा। मैं कॉलेज जाता तो श्री महाराज जी की एक विराट मूर्ति, परम गम्भीर मुद्रा में मेरे समक्ष उपस्थित रहती और ये शब्द मन को सुनाई देते – 'ऋषिराम! ये ही तुम्हारे गुरु हैं। तुम्हारी प्रार्थना के उत्तर में तुम्हारा उद्धार करने पधारे हैं।' रात को सोते और दिन में जागते हर समय यह ही आभास होता ये ही मानसिक कानों को सुनाई पड़ता। मन धीरे–धीरे श्री चरणों पर झुकने लगा। उनकी अपार कृपा।

दिल्ली में मेरे सम्बन्धी ला. हर जीवन एडवोकेट हैं। उमर में मेरे से 11–12 वर्ष बड़े हैं। वे स्वर्गीय मेहर बाबा के भक्त हैं। मेरा उनका काफी उठना बैठना रहता था मैंने उनको भी श्री गुरुदेव के दर्शन हेतु निमन्त्रित किया। दूसरे दिन वे भी सायंकाल आरती में शामिल हुए। आरती के बाद प्रवचन हुआ। उसके बीच मैंने देखा कि ला. हर जीवन लाल की आँखों से अश्रुधारा बह रही है और उनका सारा कमीज वक्षस्थल पर गीला हो गया है। श्री महाराज जी के विश्राम करने के बाद हम दोनों अलग कमरे में रात के 2 बजे तक बैठे बातें करते रहे। उनकी अश्रुधारा अब भी प्रवाहित थी। बड़े गम्भीर स्वर में मुझसे बोले – "लाला ऋषिराम, ये Perfect master अर्थात् पूर्ण सर्वशक्तिमान सद्गुरु हैं। तुम निःसंकोच इनकी शरण ले लो। 2 मास से मेरा मन–प्रवाह अवरुद्ध था। इनके दर्शन करने पर पहिले तो मुझे भी कुछ जंचा नहीं था, परन्तु प्रवचन के बीच मेरे हृदय का मल धुल गया और जो गतिरोध हो गया था वह हट गया। ये पूर्ण शक्तिमान् गुरु और सर्वशक्तिमान गुरु के शिष्य और उनके समान ही हैं।"

उनके वचन सुनकर परम आनन्द मिला। फिर भी मेरा मन पानी ही रहा। मैं सोचता "कहीं धोखा न हो जाये। गुरु कोई वस्त्र तो है नहीं कि ठीक न बैठने पर बदल डालो। कहीं ऐसा न हो कि बाद में पछतावा हो और मूर्ख बनूं।" इस प्रकार कुछ और समय मूर्ख बना रहा। पंडित जी से बात हुई, होती ही रहती थी। उन्होंने कहा – ऋषिराम जी मैंने आँखें खोल कर इनको गुरु धारण किया है। आप निश्चित रहें।"

अगले दिन मैं श्री चरणों में बैठा मन ही मन उतार–चढ़ाव कर रहा था। महाराज जी ने फरमाया – 'कोई शंका?' मैंने उत्तर दिया महाराज जी एक शंका केवल शेष है। आप जो जाति भेद करते हैं और इतना छूत छात, यह समझ में नहीं आता।' इस शंका का समाधान आपने शास्त्रीय और योग सिद्धान्तों के आधार पर प्रशान्त महासागर की गरिमा के साथ किया और मैं काफी संतुष्ट हो गया। उसी दिन पिछले पहर महाराज जी कहने लगे –'अच्छा ऋषिराम, अब हम वापिस जाना चाहते हैं। मैंने और ठहरने का आग्रह किया। श्री प्रभु जी ने कहा 'यदि तुम दीक्षा लोगे तो हम एक–दो दिन और ठहर जायेंगे, अन्यथा चलना चाहेंगे। यदि कोई शंका हो निवारण कर लो।" सहसा मेरे मुख से निकल पड़ा – "महाराज जी कल दीक्षा दे दीजिए।" भला जिस कार्य के लिए वे स्वयं पधारे थे, अर्थात् मेरा उद्धार करना उसको अधूरा छोड़ कर कैसे जाते।

यह दैविक शक्ति ही जीवन के मोड़ पर खड़ी पथ–प्रदर्शन कर रही थी। अगले दिन मेरे सौभाग्य का उदय हुआ और श्री महाराज जी ने मेरे कल्याणार्थ मुझे दीक्षित किया। उसके बाद 2–3 दिन और सद्गुरुदेव कुटिया पर ठहरे और एक दिन प्रात: वापिस पुण्यधाम सवाई चले गये।

जीवन में एक उथल–पुथल मच गई। मेरे अन्दर एक उन्माद–सा हो गया। उठते–बैठते हर समय उनका ही ध्यान रहता। उनकी परम कृपा का सागर उमड़ा पड़ रहा था। मैंने अपनी कुटिया को महाराज का आश्रम ही समझ लिया और एक सेवक की तरह ही मैं उनके ध्यान में मग्न रहने लगा। एक नये आनन्द और उल्लास की अनुभूति होने लगी। इस प्रकार एक नये जीवन का श्री गणेश हुआ।

आगे जो कुछ हुआ उसका उल्लेख आज्ञा मिलने पर फिर कभी करूंगा। यहाँ यह कह देना चाहता हूँ कि मेरे मन में एक विचित्र विश्वास उत्पन्न हो गया और प्रभु–आश्रित हो मैं सर्वथा निर्भीक हो गया, और आज तक हूँ। परन्तु अपने अज्ञान के कारण अतुल वात्सल्य और कृपा पाने पर भी मैं उनकी महिमा न जान सका, गुरु महिमा के रहस्य से अनभिज्ञ रहा। उनकी कृपाएँ किस प्रकार होती हैं इस समय समझ न सका, क्योंकि समझ थी ही नहीं – ठोकरें लगे बिना मनुष्य मनुष्य नहीं बनता। मेरे संस्कार बड़े क्लिष्ट थे। मुझे झंजोरे बिना उनका टलना कठिन था। मुझे भी श्री महाराज ने, जिस प्रकार धोबी कपड़ों को पत्थर पर कूटता है, उनकी मैल हटाने के लिए कूट–पीट कर रख दिया। बड़े–बड़े तूफान जीवन सागर में आये, नय्या डगमगाई, परन्तु उनका परम कृपाहस्त मेरे सर पर रहा। समय बीत गया, संस्कार ढल गए, नय्या तट पर आ पहुँची और जब यह भयानक सपना समाप्त हुआ। आँखें मलता हुआ मैं जागा अब कुछ आँखें खुलीं और थोड़ा–थोड़ा ज्ञान हुआ कि जो निधि मुझे अपने सहस्त्रों गुरु भाइयों की भाँति उपलब्ध हुई थी साधारण नहीं है, संस्कार तो भुगतने ही पड़ते हैं। ''अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतम् कर्म शुभाशुभम्'' परन्तु जब कोई सर्वशक्ति मान सद्गुरु पथ निर्देशन करते हैं तो भक्त की क्षति तो कुछ हो ही नहीं पाती, कटु अनुभवों में भी एक मिठास उत्पन्न हो जाती है और सद्गुरु की किस प्रकार कृपा होती है उसका कुछ ज्ञान होने लगता है। चौदह वर्ष मुझे श्री चरणों में आए हो गये हैं। परन्तु उस आरम्भ के उन्माद और आज के उन्माद में भारी अंतर है। उस समय यह एक बचपन का सा उन्माद था। आज का नशा गहरा और ठोस है। एक उर्दू कवि ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा है –

'इंतहाए नशा से आता है होश, होश है इंतहाए नशा' अर्थात् जब शिष्य का भक्ति उन्माद गहरा हो जाता है उसको होश आता है अर्थात् ज्ञान होता है। और जो होश में अपने को समझते हैं शराबी की भाँति नशे अर्थात् अज्ञान अंधकार में होते हैं। ठोकरें खाकर उनके स्वरूप को मैं आज कुछ– कुछ पहिचानने लगा हूँ। पूरी पहचान हो जाने पर तो मुक्ति–द्वार के पट ही खुल जाते हैं। परन्तु आज मेरे लिए गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्द सर्वथा सार्थक हो गये हैं –

श्री गुरु चरणों की महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है –

''बड़ भाग मिलहि जासु''

हम सहस्रों गुरु भाइयों का परम सौभाग्य है कि आज के युग में भी हमें इस परम विभूति के दर्शन हो रहे हैं और इनकी अपार कृपा और वात्सल्य का जो प्रबल प्रवाह बहता रहता है उसमें स्नान कर अपना उद्धार कर पाने का अवसर हमें मिल रहा है। इस अवसर से पूरा–पूरा लाभ उठाना काम हमारा है। उनकी कृपा तो है ही और सदैव बनी रहेगी।

● ● ●

क्या करना चाहिए

(समर्थ रामदास के उपदेश)

प्रातःकाल उठकर कुछ पाठ और परमात्मा का यथाशक्त स्मरण करना चाहिए फिर ऐसी दिशा में जाना चाहिए जिसका किसी को पता न चले और वहाँ निर्मल जल से शौच तथा आचमन आदि करना चाहिए। मुख मार्जन, प्रातः स्नान, संध्या तर्पण, देवार्चन और अग्नि की सांगोपांग उपासना करनी चाहिए। इसके बाद कुछ फलाहार करके सांसारिक कार्यों में लगना चाहिए और उत्तम बातों से सब लोगों को प्रसन्न रखना चाहिए। अपने–अपने व्यापार में सब को सावधान रहना चाहिए। दुश्चित्त रहने से लोग धोखा खाते हैं। दुश्चित्त तथा आलसी रहने से यह प्रत्यक्ष फल देखने में आता है कि मनुष्य चूक जाता है और धोखा खाता है। कहीं कोई बात भूल जाता है तो कहीं कोई। वस्तु छोड़ या खो देता है और तब उसके लिए दुःखी होता है। इसलिए मन को सदा सावधान और एकाग्र रखना चाहिए तभी भोजन भी मीठा और स्वादिष्ट लगता है। भोजन करने के बाद कुछ अध्ययन और अच्छी बातों की चर्चा करनी चाहिए और एकान्त में बैठकर अनेक प्रकार के ग्रन्थों पर विचार करना चाहिए। तभी मनुष्य पूर्ण बन सकता है नहीं तो अपूर्ण ही बना रहता है।

जब गुरु जी दरोगा बने

– जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली, मो.: 09212434003

यस्य स्मरण मात्रेण ज्ञान मुत्यधते स्वयम्।
सदैव सर्व सम्पति स्तस्मै श्री गुरवे नमः।।

(गुरु गीता)

काल चक्र ,युग चक्र, और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले हृदय सम्राट सिद्ध योगाधिपति मेरे सद् गुरु देव भगवान श्री चन्द मोहन जी महाराज अपने लाड़ले बच्चों पर किस प्रकार से समय, समय पर अपनी कृपाएँ बरसाते रहते है यह समझना अच्छे से अच्छे ध्यानाभाषियों के भी बूते से बाहर की बात है। जन, कल्याण के निमित इस धरा धाम पर अवतरित आराध्यदेव जी किसी को हस्य से किसी को स्पृष्य से किसी को आशीर्वाद से किसी को रज से और किसी को पुण्य प्रसाद से निहाल करते रहे है। इतना ही नहीं यौगिक विभूतियों से सिद्ध एव रिद्धि–सिद्धि के स्वामी अपने बच्चों की सहायतार्थ हेतु तरह–तरह के वेश–भूषा बना कर मौके पर पहुँच जाते हैं। कहीं न्यायधीश बनकर, कहीं सरदार जी बनकर, कहीं सर्जन बन कर, कहीं बाबा बन कर, कहीं फकीर बन कर और कहीं–कहीं पुलिस अधिकारी आदि बन कर हर प्रकार की समस्याओं से रक्षा करते रहते हैं।

इसी प्रकार का एक कृपा प्रसंग भी सिद्धयोग आश्रम सवाई धाम से सम्बन्धित 87 वर्षीय हमारे एक आदरणीय गुरु भाई श्री कृष्ण कुमार सिसौदिया का 40–45 वर्ष पहले का है। उस समय श्री सिसौदिया जी ग्वालियर के एक भांढ़ेर नामक कस्बे में राजकीय स्कूल के मुख्यअध्यापक के पद पर कार्यरत थे। भांढ़ेर में ही अपनी पत्नी एवं बाल गोपाल के साथ श्री राम दुलारे पाण्डे के मकान का एक भाग किराए पर लेकर शान से सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। मा. जी ने सन् 1965–66 में सह पत्नि अपने ऋषिकेश आश्रम में गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षा ली थी। अपने बल बुद्धि और साहस के लिए विख्यात मा. जी नियमित आरती पूजा के साथ गुरुदेव भगवान में अटूट श्रद्धा रखते हैं। होली उत्सव के नाम पर सवाई धाम पधारे परिवार ने दिनांक 29 मार्च 2013 को बताया कि प्रस्तुत घटना का कारण इस प्रकार बना कि एक प्रातः जब मा. जी प्रातः भ्रमण से घर लौटे तो टूटी पर हाथ–मुँह धो रहे थे। संयोग से यह टूटी पाण्डे जी की थी। अतः पाण्डे की पत्नी ने विवाद खड़ा कर दिया कि मा. ने हमारी टूटी को झूठा कर दिया, इसका अशुद्ध पानी हम कैसे पीएंगे? किसी की बात सुनने के स्थान पर उच्चक–उच्चक कर बोलती ही चली। अप शब्दों का भी प्रयोग किया अतः सारा मौहल्ला इकट्ठा हो गया। जिसको मान न पचे तो अहंकार की डकारें आती है और यहीं से झगड़े का अंकुर फूट पड़ा। किसी ने सच ही कहा है कि –

बात बतंगड़ ज्यौं बनत, तिल ज्यौं बनत ताड़।
बात बढ़ा कर कोई करे, तब राई बनत पहाड़।।

इस घटना से मा. जी का पारा आसमान पर चढ़ना सहज ही था। तेज तर्रार मा. जी घर से निकलते समय एक पुलिसवाई सोटी साथ रखते थे। एक प्रात: मा. जी जब सैर पर गए तो वहाँ मकान मालिक पाण्डे जी दिखाई पड़ गए। देखते ही मा. जी के सबर का बान्ध टूट गया और आव देखा ना ताव, वे दनादन पाण्डे पर टूट पड़े। दे सोटी पर सोटी, कोई गिनती नहीं। इसी मध्य वहाँ श्री कुशवाहा लैकचरार आ धमके, उन्होंने ही किसी तरह मा. से सोटी छीनकर तोड़ डाली और मामला शान्त किया। तन-मन से पीड़ित पाण्डे जी बुदबुदाते-बुदबुदाते घर लौटे कि –

रे पगले मास्टर – यह तूं क्या मारा मोय। एक दिन ऐसा आएगा – मैं मार दिखाऊं तोए।।

तत्पश्चात् एक शरारत के अन्तर्गत नाराज पाण्डे ने एक सायं मा. जी का मकान घेर लिया एवं मुख्य द्वार पर बाहर से अपना ताला जड़ दिया। अब मा. जी का परिवार अपने ही घर में बन्धक बन गया। समय की नजाकत खतरे से खाली नहीं थी। कुछ भी अनिष्ट के लिए आईना क्यों झूठ बोले? शान्त तालाब में ढेला फैंक कर तरंग पैदा की जा रही थी। किसी ने सच कहा है –

नजरों से पहचानिए – दुष्ट जनों की चाल। अन्दर की करतूत से – बाजें मूँह के गाल।।

मगर गुरु कृपा से यह कटु सत्य है कि जहाँ इष्ट होता है वहाँ अनिष्ट कभी नहीं होता है। मा. जी में क्रान्ति कार्यों की गाथाऐं कूट-कूट कर भरी हुई हैं कि –

संकट को देख वीर घबराया नहीं करते। कुछ ऐसे फूल हैं जो मुरझाया नहीं करते।।

अत: लम्बे पुष्ट शरीर और चंचल मन वाले मा. जी वीर हनुमान जी की तरह दमके और सीढ़ी लगा कर एक दीवार पर चढ़ गए फिर रस्सी बान्ध कर बाहर गली में कूद गए। तुरन्त बाहर लगा ताला तोड़ डाला। इधर घर में आदरणीया गुरु बहिन श्रीमति रमा देवी मा. जी के दबदबे से प्रभावित, अपने निजी विरह से जुझती हुई, स्वयं में दीन हीन बनी, सदैव अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक भाग्य विधाता गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के गुण गान एवं आर्त पुकार में अधिक समय व्यतीत करने वाली, आज भी बराबर गुरु चरणों में फूल चढ़ा रही थी कि –

(तर्ज : गाड़ी आले ....)

(टेक) **गुरु देव हमारे, झगड़ा मिटा दे।**
दया की दृष्टि डाल – गुरु जी मैं बेहाल हुई।

मा. जी मेरी सुनता नहीं, खतरे में वो कूद गया।
लल्ला मेरे छोटे हैं, किसके भरोसे छोड़ गया।
जिन्दा जी मैं मर रही, करो मरी-मरी का ख्याल।
गुरु जी मैं ...

शरणा फकत आपका है, कोई संगी साथी नहीं
एक गुरु को पुकार रही, दूजी कोई पुकार नहीं
मेरी पुकार सुन लो दाता खतरा दिजो टाल
गुरु जी मैं...

उधर बाहर गली में हल–चल हो गई। परिणामत: एक मित्र मा. जी को कोतवाल ले गए। थाने में T.I. वैसे तो गुरु जी का शुक्र गुजार था कि एक बार उसके अपने पुत्र की बीमारी से निजात पाने के लिए गुरु जी से प्रसाद लाभ पाया था मगर पाण्डे जी का रिश्तेदार और यार था। अत: उसने एफ.आई.आर. लिखना तो दूर, प्रार्थना पत्र तक नहीं पकड़ा और दोनों को समझा–बुझा कर, किए कर्म पर धूल डाल, वापिस घर भेज दिया। इसे ही कहते हैं सियासत के मर्तबान में भ्रष्टाचार का आचार। फिर भी मा. जी तो शान्त बैठ गए मगर पाण्डे जी की नींद हराम हो गई। अत: उसने कुछ सिर फिरों की सूझ से एक घातक योजना रची। योजना को प्रारूप देने के लिए एक प्रात: जब मा. जी अपनी नियमित सैर पर निकले तो पाण्डे ने उक्त तत्व को मा. जी के आगे पीछे लगा दिया। अपना झंडा ऊंचा मान कर स्वयं ऐंतराता, दान्त कटकटाता सबसे पीछे चला।

मगर आश्चर्य – महान आश्चर्य! यह क्या? मा. जी के संग तो हथियारों से लेस दरोगा जी अंग–रक्षक बन कर चल रहे हैं। फिर अपने हिमायतियों पर आंखें तैराई तो वो भी पुलिस दिखाई दिए। अब तो मारे गए, भागो यारो भागो...। इस प्रकार पाण्डे जी घर तो सुरक्षित लौट आए मगर अन्दर तक काँप गए। पश्चाताप की विरह जल उठी। अब क्या होगा मेरा? लगता है मेरी खैर नहीं... ...। यह तो कोई बड़ा आदमी है जो इतनी सिक्योरिटी से चलता है।

समय बड़ा बलवान रे, समय बड़ा बलवान। अपने प्राण बचाने को, याद आया भगवान।।

परिणामत: श्री पाण्डे जी मा. जी की शरण में पहुँच गए। अपने पूर्व कृत कर्मों एवं घातक योजना तथा पुलिस विवरण बताते– बताते पश्चाताप के आसुओं द्वारा क्षमा के साथ झूठी–टूटी को भी धो डाला और इस प्रकार टूटी का पानी शुद्धि के साथ अपना हृदय भी शुद्ध किया।

ऐसे संकट मोचन गुरु देव को राम कहूं या कृष्ण कहूं या शंकर कहूं। शेष नाग भी महिमा गाए तो थक जाएगा। पृथ्वी पर लिखें तो छोटी पड़ जाएगी। कितने साधारण, सुलभ दर्शन, ढेरों आशीर्वाद..... आदरणीय गुरु भाइयों को याद होगा कि सन् 1988 के रामनवमी महाउत्सव पर भाग्य विधाता ने एक अमूल्य एवं दुर्लभ आशीर्वाद सामूहिक रूप से खुश होकर दिया था कि जितने मेरे बच्चे हैं, जो यहाँ बैठे हैं, ये सब अगला जन्म मनुष्य का पाएंगे ही पाएंगे। मगर उच्च स्तर का जन्म प्राप्त करने के लिए प्रात: 5 बजे से 7 बजे तक अपना गुरु मन्त्र अवश्य–अवश्य किया करें..। ऐसे सर्वसमर्थ्य त्रयलोक पावन स्वयं नारायण गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के श्री चरणों में "अधम" का कोटि–कोटि नमन।

ये तन विष की बेलरी – गुरु अमृत की खान।
शीश दिए ऐसे गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान।।

जय गुरु देव!

●●●

सद्गुरु से योग दीक्षा की प्राप्ति पूर्व जन्मों के संस्कारों का फल

– प्रेम बिहारी त्रिपाठी, से.नि. अधिशासी अभियंता, झाँसी

पूर्व जन्मों के पुण्यफल एवं निष्काम की गई आध्यात्मिक साधना निर्धारित करती है अगले जन्म के संस्कारों में योग दीक्षा संस्कार प्राप्ति का योग। जिन साधकों की साधना अधूरी रह गई और उनका प्राणान्त हो गया, उन्हें अगले जन्म में, उस अधूरी रह गई साधना को पूरा करने के लिए, योग दीक्षा प्राप्ति का अवसर मिलता है। ये बातें कर्माशय में पड़े संस्कारों को देखने व समझने वाले उच्चकोटि के गुरु अथवा सद्गुरु अच्छी तरह समझते हैं। वे यह भी समझते हैं कि किस व्यक्ति का दीक्षा संस्कार किस गुरु अथवा किस सद्गुरु से निर्धारित है।

मेरे मन में तीव्र विचार आ रहे थे कि मुझे किसी उच्चकोटि के गुरु से गुरु दीक्षा लेना चाहिए। उस समय मेरी पोस्टिंग अल्मोड़ा में सहायक अभियंता के पद पर थी। वर्ष 1976 की गुरुपूर्णिमा आने को थी। इसी उधेड़बुन में था कि आखिर गुरु दीक्षा किस से ली जाय। झाँसी निवासी होने के कारण, उन दिनों दतिया म.प्र. में पीताम्बरा पीठ के स्वामी जी को मैं जानता था। उनकी महिमा और कीर्ति आस–पास के शहरों में व्याप्त थी। वे भी मुझे चेहरे से जानते थे। मेरी उनके साथ आध्यात्मिक प्रसंगों पर दो–तीन बार आधी अधूरी चर्चा भी हो चुकी थी। वह परम विद्वान होने के साथ–साथ माँ–पीताम्बरा में अपनी पूर्णलयता बनाये रहते थे। अतः विचार बना उनसे दीक्षा प्राप्त करने का। इसलिए अल्मोड़े से काठगोदाम, काठगोदाम से आगरा होते हुए, झाँसी अपने घर, गुरु पूर्णिमा के एक दिन पूर्व, आ गया। सब तरह की पूजन सामग्री, वस्त्र आदि लेकर, दतिया जाकर, बनखण्डी आश्रम के शिष्यों की लाइन में खड़े होकर, अपने नम्बर आने की प्रतीक्षा करने लगा। लाइन आगे बढ़ती गई और मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया, जहाँ से आसन पर बैठे स्वामी जी पूरी तरह दिखाई देने लगे। यकायक उनकी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी, वह कुछ क्षणों तक मुझे देखते रहे, फिर हाथ के इशारे से मुझे बुलाया। अब तो मेरी प्रसन्नता का कोई पार नहीं था। इतनी बड़ी भीड़ में, मुझे स्वामी जी ने पहिचान लिया, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी। अब तो बिना नम्बर आये ही जल्दी ही दीक्षा मिल जायेगी। प्रसन्न होता हुआ जल्दी ही लाइन से निकल कर, तुरन्त उनके पास जाकर, अपनी पूजा की थाली के साथ बैठ गया। वह धीरे से बोले, 'वहाँ क्यों खड़े थे?' 'वही तो है दीक्षा लेने वालों की लाइन, मुझे भी दीक्षा लेना है। आजकल अल्मोड़े में था, वहीं से कल ही आया हूँ। इसलिए आते ही लाइन में लग गया था, 'मैंने बिना सांस लिए तुरन्त अपनी सारी बात कह डाली। मेरी बात सुनकर, वह थोड़ा मुस्कुराये, गम्भीर होकर बोले, 'तुम्हें दीक्षा नहीं मिलेगी।' सुन कर मैं चौंक गया। मैंने कभी ऐसा सोचा तक नहीं था कि मुझे ऐसा कोई उत्तर दीक्षा के प्रति मिल सकता है, मेरी कल्पना से बाहर की यह निराशाजनक बात थी। मेरे मन में एक प्रश्न उठा, मैंने पूछा, ''गुरुदेव! क्यों नहीं मिलेगी

दीक्षा? क्या मैं आपकी दीक्षा के योग्य नहीं हूँ? मेरे दोनों प्रश्नों के साथ अपमान और निराशा ने मेरे नेत्र सजल कर दिये। हाथ का इशारा करके, स्वामी जी ने पूजन के कार्यक्रम को कुछ मिनटों के लिए रोक दिया। मेरे सिर पर हाथ रखकर, बड़े गम्भीर स्वर में बोले, "तुम्हारी योग्यता और पात्रता में कहीं कोई कमी नहीं है। यदि कोई कमी है तो मात्र इतनी कि तुम्हारा संस्कार मुझसे नहीं है, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। तुम्हारा गुरु तो कोई और ही है। इसलिए यह सब जानते हुए, मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता।"

"लेकिन मैं तो आपके अलावा किसी अन्य गुरु को जानता भी नहीं हूँ," मैंने प्रतिवाद किया। वह समझाते हुए बोले, अभी तुम्हारा शिष्य बनने का संस्कार उदय नहीं हुआ, उसका अभी समय नहीं आया है। जब समय आयेगा तो तुम्हारा गुरु तुम्हें मिल जायेगा।" "समय आयेगा, कब आयेगा? मैं तो अल्मोड़े से चलकर, इतनी दूर से मात्र दीक्षा लेने ही आया था," नादानी पूर्ण बातें कहते-कहते, मैं उदास हो गया। कुछ क्षण सोच कर वह बोले 'अच्छा ऐसा करो, तुम मेरे पैर के अंगूठे के नाखूनों का मात्र पूजन कर लो। तुम्हारा गुरु इस समय जहाँ भी होगा, उसका वहीं पूजन हो जायेगा और वह पूजन उन्हें स्वीकार भी होगा।" मैंने बताई गई विशेष विधि से स्वामी जी के पैरों के अंगूठों के नाखूनों का पूजन किया और उठने लगा, तो वह हँस कर बोले," तुम्हारे गुरु इस समय तुम्हारी निष्ठा पर प्रसन्न हो रहे हैं, वो तुम्हें देख रहे हैं। उनसे मिलने की लम्बी प्रतीक्षा का समय अब घट गया है, अब जल्दी ही तुम्हारे गुरु, तुम्हें मिल जायेंगे।" उदास मन लिए मैं अल्मोड़ा लौट आया।

अल्मोड़े से कानपुर और कानपुर में तीन वर्ष रहने के बाद, झाँसी आ जाने के बाद भी मैं गुरु दीक्षा न मिल सकने की टीस भूला नहीं था। मैं अपने कमरे में बैठा दफ्तर का कोई काम कर रहा था। यकायक पिताजी ने आवाज देकर मुझे बुलाया। मैं जब नीचे बैठक में उनके पास पहुँचा तो उन्होंने मेरा परिचय सामने बैठे आगन्तुक महाशय से कराते हुए समझाया, "इनका नाम कृष्णकान्त झा है यह आगरा से आगे एत्मादपुर होते हुए, श्री सिद्धगुफा सवाई जा रहे हैं। वहाँ एक सद्गुरु हैं, जैसा कि यह बता रहे थे मुझे, इस कलियुग में ऐसे गुरु मिलना बहुत कठिन है, यदि मिलते हैं तो बड़े भाग्य से मिलते हैं। जाओ इनके साथ और उनके दर्शन कर आओ... और हाँ, यदि दीक्षा मिल जाये तो तुरन्त ले लेना।'

पिता जी की आज्ञा का पालन करते हुए मैं कृष्णकांत झा के साथ सवाई आश्रम पहुँच गया। वर्ष 1980 का सावन का महीना रहा होगा। आश्रम में महारुद्र यज्ञ चल रहा था, उसी की पूर्णाहुति अगले दिन होनी थी। श्री सद्गुरुदेव जी का नाम श्री चन्द्रमोहन जी महाराज था किंतु जो उनके बारे में जानते थे वे उन्हें योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज कहकर, अपनी वाणी और श्रद्धा को पवित्र कर रहे थे। श्री सद्गुरुदेव अपने कक्ष से बाहर आराम कुर्सी पर विराजमान थे। झा भाई जी के साथ, मैं भी उनके निकट जाकर, प्रणाम करके, फर्श पर बैठ गया। योग सम्बन्धी कोई प्रकरण चल रहा था। मुझे लक्ष्य कर श्री सद्गुरुदेव जी ने पूछा,

"लल्ला तुम आ गये? मैंने स्वीकारोक्ति में सिर झुका कर दोबारा प्रणाम किया। मैंने साहस बटोर कर, उनके निकट जाकर, दीक्षा के विषय में पूछना चाहा तो इससे पहिले कि मैं कुछ पूछता, उन्होंने मुझे लक्ष्य कर, स्वयं ही कह दिया, "कल सुबह तुम्हें दीक्षा दी जायेगी" कुछ रुक कर आगे बोले, लल्ला! तुम ऐसा करना, आश्रम के बाहर निकल कर, थोड़ी दूरी पर चाँदनी के सफेद फूलों के पेड़ हैं, उनसे फूल तोड़ लाना। रात में सुई धागे से दो मालायें बना लेना, सुबह इनकी जरूरत पड़ेगी। श्री सद्गुरुदेव की आज्ञानुसार, मैंने दीक्षा की तैयारी रात में ही मालायें बना कर कर ली। सुबह मुझे विधिवत् दीक्षा प्राप्त हुई। श्री सद्गुरुदेव ने मुझे श्वांस प्रश्वांस जपने वाला दिव्य मंत्र दिया और उसके जपने की विधि समझाई तथा साधना से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण निर्देश दिये। इस बीच एवं उसके बाद कभी भी उन्होंने न तो मेरा नाम पूछा और न ही मेरा परिचय आदि। हमेशा ऐसा लगता रहा कि वह मुझे बहुत ही निकटता से जानते हैं और अच्छी तरह पहिचानते भी हैं।

श्री सद्गुरुदेव भगवान जब तक व्यक्त रूप में रहे, मुझे बहुत कुछ देना चाहते थे, किन्तु पात्रता की कमी एवं क्लिष्टतम् संस्कारों के प्रवाह के कारण, मैं वह सब प्राप्त नहीं कर सका था, जिसे अब ढूढने की जिज्ञासा है। व्यक्त रूप में जब उनसे लेने का समय था, तो नासमझी के आवरण ने मुझे कुछ समझने ही नहीं दिया।

अपनी दीक्षा संस्कार के सारे घटनाक्रम पर दृष्टि दौड़ाई तो समझ में आया कि वास्तव में "सद्गुरुदेव" की प्राप्ति पूर्व निर्धारित संस्कारों के कारण होती है और वह भी तब, जब उन संस्कारों के भोगने का भाग्य के अनुसार समय आ जाये। पीताम्बरा पीठ दतिया के स्वामी जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से देख कर, उन संस्कारों का उल्लेख करते हुए, स्वयं दीक्षा देने से इसलिए इंकार कर रहे थे, वह जान गये थे कि यह बालक किसी योगेश्वर का बालक है और इसका मार्ग "शक्तिमार्ग" न होकर "योग मार्ग" है।

बोलो "श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय"

● ● ●

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनःपुनः।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

धन, मित्र, पत्नी और यह जगत (सम्पदा, देश, राज्य आदि) तो बार-बार मिल सकता है पर मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलता। बल्कि अनेक योनियों में भटकने के बाद मनुष्य योनि मिलती है। अतः इस दुर्लभ मनुष्य शरीर का सदुपयोग कर शुभ कर्म और धर्म के अनुसार आचरण करना चाहिए।

भगवत्कृपा / गुरुकृपा

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

माया की यह सृष्टि महत्ब्रह्म के अहंकार से प्रकट होती है, बुद्धिबोधात्मक अहंकार से ही इसका संचालन होता है तथा अहंकार के उत्पत्ति स्थान में ही लीन होती है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण का स्पष्ट आदेश है कि –

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृतिः प्रसृता पुराणी।।

अर्थात् कल्याणकांक्षी को उस परमात्मा की ही शरण में जाना चाहिए जो इस सृष्टि का आदिस्त्रोत है और जिसके आधीन मायाशक्ति ने इसकी रचना की है। इस संदेश का यही तात्पर्य है कि जिस माया की अनन्त शक्तियाँ हैं, अनन्त प्राणादि भाव हैं तथा अनन्त विस्तार है, उससे मुक्ति किसी भी अहंकारयुक्त साधन अथवा पुरुषार्थ से संभव नहीं है। उपनिषदों में इस रहस्य का पर्दाफाश किया गया है कि –

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि।
भूतं भव्यं यच्च वेदाः वदन्ति।।
अस्मात् मायी सृजते विश्वमेतत्।
तस्मिन् चान्यो मायया सन्निरुद्धः।।

(श्वेता.उप. 4/9)

न चक्षुसा गृह्यते नापि वाचा।
नान्यैः देवैः तपसा कर्मणा वा।।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वः।
ततस्तु तं पश्यते निश्कलं ध्यायमानः।।

(मुण्डक उप. 3/1/8)

अणोरणीयान् महतोमहियान्
आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोकः।
धातुः प्रसादात् महिमानमीशम्।।

(श्वेता. उप. 3/20)

अर्थात् परमात्मा की यह विचित्र लीला है कि अपनी ही माया से अपने ही हिरण्यगर्भ स्वरूप से इस विश्व को प्रकट करके इसके संचालन के लिए वेदों, यज्ञों, तप तथा वृत्तों एवं अनन्त मायिक भावों का विधान बनाकर स्वयं को भी अन्य सा अज्ञानी भोक्ता के रूप में अनन्त योनियों में लोकव्यवहार का नाटक किया। अपने को ही दो श्रेणियों में बाँट दिया। एक जीवात्मा तथा दूसरी परमात्मा। जीवात्मा को मायाधीन बना दिया तथा परमात्मा को मायाधीश होकर विश्व का शासनकर्ता बना दिया। अपनी माया शक्ति को भी दो रूपों में विभक्त कर दिया, प्रथम रूप अविद्या है जोकि जीवसृष्टि का कारण है तथा द्वितीय रूप विद्या है जोकि परमात्म भाव की कारण है। वेदों में इस रहस्य का संकेत दिया है कि –

जीवं कल्पयति पूर्वं ततो भावान् प्रथग्विधान्।
वाह्यानाध्यात्मिकांश्चैव यथा विद्या तथास्मृतिः।।
कल्पयति आत्मनात्मानमात्मा देवः स्वमायया।
स एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तविनिश्चयः।।

अर्थात् यह वेदान्त शास्त्र का निर्णय है कि परमात्मा ने पूर्व में प्राणादि माया के अनन्त भावों की कल्पना कर जीवसृष्टि बनायी तत्पश्चात् अविद्यारूपी स्मृति से लोकव्यवहार की वहिर्मुखी प्रवृत्ति तथा विद्यारूपी स्मृति से आध्यात्मिक भाव प्रकट किया। पुनः अपनी विद्यारूपी माया से अपने को भी प्रकट किया जिससे ईश्वर के रूप में मायाधीश होकर माया के विधान को क्रियान्वित किया। इन दो रूपों में ईश्वर सत्यस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप है और जीव सत्यस्वरूप पर विकल्पित अज्ञानस्वरूप है। परमात्मा का स्वरूप प्रकृति के सूक्ष्मतर तत्वों से भी सूक्ष्मतम है तथा प्रत्येक जीव की हृदयग्रन्थि में गुप्त है। उसका साक्षात्कार न तो चक्षु से सम्भव है, न वाणी से, न अन्य मनसहित ज्ञानेन्द्रियों से और न बुद्धि से। इस उद्देश्य के लिए तो उसी परमात्मा की कृपा से प्राप्त प्रज्ञाचक्षु की आवश्यकता होती है। यह प्रज्ञाचक्षु तत्वज्ञान का प्रसाद है जोकि विशुद्ध चित्त में परमात्मकृपा से परमात्मा के दिव्य स्वरूप से प्रकट होता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी इसका संकेत दिया है कि –

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।
एवं सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येनमामुपयान्ति ते।।
तेषामेव अनुकम्पार्थमहं अज्ञानजं तमः।
नाशयामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वतः।।

अर्थात् प्रज्ञाचक्षुरूपी ज्ञान के समान उत्कृष्ट तथा पवित्र इस संसार में कोई तत्व नहीं है। किन्तु यह अहंकारयुक्त पुरुषार्थ से नहीं प्राप्त होता अपितु उचित समय पर स्वयं ही परमात्मा

का कृपाप्रसाद के रूप में प्राप्त होता है। इसी को योगससिद्धि कहा गया है। अतः जो जीव श्रद्धाभक्ति से युक्तयोगी होकर परमात्मा की उपासना करते हैं उन्हीं को यह योगसिद्धि वाला बुद्धियोग प्रसाद के रूप में प्राप्त होता है। उन्हीं के लिए परमात्मा की कृपा से अज्ञानजनित अविद्या का अंधकार नष्ट होता है जिससे कि हृदयस्थ ज्ञानस्वरूप परमात्मा से ज्ञानचक्षु की प्राप्ति होती है। यह ज्ञानस्वरूप परमात्मा ही सद्गुरु है, क्योंकि शास्त्र का कथन है कि –

नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।
गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सामर्थ्यं तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया।।
यत्र अवच्छेदनार्थे कालो नोपवर्तते सः गुरुः ।
गुरुणामपि गुरुः कालेनान्वच्छेदात्।।

अर्थात् सद्गुरु ही विशुद्ध परमब्रह्म है अतः गुरु से उत्कृष्ट कोई अन्य सत्ता है ही नहीं। गुरुकृपा से ही तीनों महादेवों ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को सृष्टि की रचना, सृष्टि पर शासन तथा सृष्टि के प्रलय की सामर्थ्य प्राप्त हुई है। इस संसार में परमात्मा कालातीत होने के कारण गुरुओं का भी गुरु है। अतः गुरु वह सत्ता है जो काल की सीमा से भी परे कालातीत है। इसीलिए उपनिषदों में गुरु को परमात्मा का ही मायातीत स्वरूप माना है और उसी रूप में गुरु की वन्दना की है कि –

येनेरिताः प्रवर्तन्ते प्राणिनः स्वेषु कर्मसु।
तं वन्दे परमात्मानं स्वात्मानं सर्वदेहिनाम्।।
यस्य पादांशुसम्भूतं विश्वं भाति चराचरम्।
पूर्णानन्दं गुरुं वन्दे तं पूर्णानन्दविग्रहम्।।

अर्थात् सृष्टि के समस्त प्राणियों की बुद्धिरूपी गुफा में स्थित आत्मा के रूप में विद्यमान उस परमात्मा की हम वन्दना करते हैं जिसकी प्रेरणा से सभी प्राणी अपने–अपने कार्यों में लगे हैं। हम उस ज्ञानविज्ञानस्वरूप आनन्दमूर्ति गुरुदेव की भी वन्दना करते हैं जिसकी चरणरज से उत्पन्न चराचर जगत प्रकाशित हो रहा है और जो परमात्मा का ही शुद्ध स्वरूप है। भगवान श्रीकृष्ण इस सत्य की स्वयं पुष्टि करते हैं कि –

सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।

अर्थात् जो योगयुक्त महात्मा मुझमें एकत्वभाव से मेरी उपासना करते हैं वह वस्तुतः शरीरधारी होते हुए भी मेरे दिव्य स्वरूप में ही रमण करते हैं। शिवसंहिता में भगवान शिव का भी यही निष्कर्ष है कि योगसिद्धि तथा ज्ञानचक्षु की प्राप्ति सिद्धगुरु की कृपा के बिना सम्भव नहीं है। किन्तु सिद्धगुरु की संगति शुद्ध अन्तःकरण वाले साधक को पुण्यों के फलस्वरूप होती है।

भगवान शिव का कथन है कि –

पश्चात् पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।।
ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।
योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेत् विधे।।

अर्थात् योगसाधना करते–करते जब अत्यधिक पुण्यों का अन्तःकरण में संचय हो जाता है तब पुण्यफल तथा विशुद्ध अन्तःकरण वाले साधक को परमात्मा की कृपा से सिद्धगुरु की प्राप्ति होती है। सिद्धगुरु के शक्तिपात से ही योगसिद्धि प्राप्त होती है अन्यथा नहीं। योगसिद्धि से ज्ञानचक्षु की प्राप्ति होती है जिससे अविद्याजनित संसार नष्ट होता है, क्योंकि कर्मबन्धन तथा गुणबन्धन दोनों ही क्षीण हो जाते हैं। योग सिद्धि के द्वारा आत्मसाक्षात्कार के बिना शब्दज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता। शास्त्रों का यह स्पष्ट निष्कर्ष है कि कृपा के बिना ज्ञानचक्षु की प्राप्ति सम्भव नहीं। सद्गुरु परमात्मा का ही दूसरा रूप है अतः परमात्मा की कृपा गुरुदेव के शक्तिपात में निहित रहती है। प्रकृति तथा पुरुष के अत्यन्त गुप्त रहस्यों को केवल ज्ञानचक्षु से ही जाना जा सकता है। अतः ज्ञानचक्षु के जिज्ञासु को यह सत्य सदैव स्मरण रहना चाहिए कि जो गुरुदेव का प्यारा है वही परमात्मकृपा की अधिकारी है और गुरुदेव का प्यारा वही होता है जिसमें अव्यभिचारिणी अनन्य भक्ति के लक्षण हैं जिसका स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में बताया है कि गुरुभक्ति के बिना ज्ञानचक्षु सम्भव ही नहीं। शास्त्रों के रहस्य उसी को प्रकट होते हैं जिनके हृदय में परमात्मा तथा गुरुचरणों में समानभाव से अनन्य प्रेमाभक्ति है। इसमें व्यभिचार नहीं है क्योंकि दोनों का सत्यस्वरूप एक ही है। भगवान श्रीकृष्ण की दृष्टि में ऐसे भक्तों के लक्षण हैं कि –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तोयः स च मे प्रियः।।
अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः मे प्रियः।।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः। *(क्रमशः)*

योग-आसन

उत्थित पद्मासन

विधि – यह आसन बिल्कुल पद्मासन ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि पद्मासन लगाकर पालथी के बराबर अपने दोनों हाथों को जमाकर व पेट को अन्दर की ओर सिकोड़ते हुए अपने शरीर जितना भी अधिक उठाया जा सके उठा दो, छाती को तनाव के साथ बाहर की ओर निकाल कर व सामने देखते हुए करें। इसको करने वाला साधक अपने को झूले की तरह झुला भी सकता है।

समय – साधारण आधे मिनट से प्रारम्भ करके दो मिनट तक किया जा सकता है।

लाभ – भुजबल की वृद्धि, छाती का विकास, क्षुधा वृद्धि एवं सभी प्रकार के उदर रोगों का नाश करने वाला है।

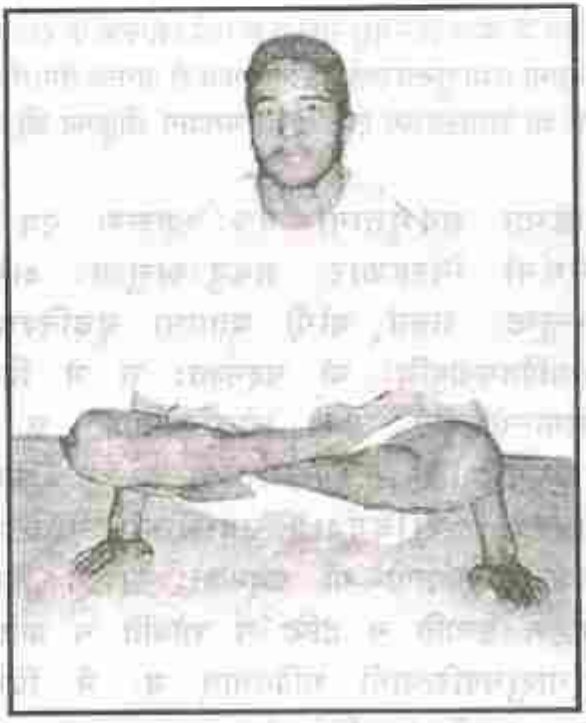

श्रीगीतामृत - पदावली

लेखक – रामप्रकाश गुप्ता, हल्द्वानी, प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

मैं हूँ कौन तथा कैसा हूँ, इस भक्त से लेता जान।
मुझे जानकर तत्व-सहित वह मुझमें मिलता, पार्थ ! निदान।।55।।

मेरे ही आश्रय में जो नर कर्मों को करता रहता।
कृपा-पात्र वह मेरा होता, अव्यय पद धारण करता।।56।।

तन से मन से सब कर्मों को तू मुझको ही अर्पित करना।
बुद्धि-योग का आश्रय लेकर चित्त सदा मुझमें ही धर।।57।।

मुझमें मन दे, मम प्रसाद से कष्ट हटेंगे सब यह जान।
अहंकारवश नहीं सुने यदि, निज विनाश तब निश्चय जान।।58।।

यदि सोचेगा 'नहीं लड़ूंगा,' अहंकार का कर आश्रय।
प्रकृति लड़ाएगी, 'न लड़ूंगा' मिथ्या तेरा यह निश्चय।।59।।

अपने स्वाभाविक कर्मों का दृढ़तम है तुझको बन्धन।
यदि न मोहवश करे, करेगा परवश होकर, कुरुनन्दन।।60।।

ईश्वर सबके भीतर रहता औ' उसकी माया द्वारा-
सदा घुमाया जाता है यह यंत्रारूढ़ जगत् सारा।।61।।

हे अर्जुन! तू सब प्रकार से शरण उसी प्रभु की जाना।
और अनुग्रह से उसके ही, परम शांतिमय पद पाना।।62।।

गुप्त ज्ञान मैंने बतलाया, अर्जुन! उसको मन में धर।
भली-भांति तू इसे सोचकर, जैसी इच्छा वैसा कर।।63।।

हे अर्जुन! अब सबसे बढ़कर सुन ले गोपनीय यह बात।
तेरे हित कहता हूँ फिर से , तू अतिशय प्रिय मुझको, तात।। 64।।

अचल भक्त बन जा तू मेरा, पूज मुझे, कर मुझे प्रणाम।
सत्य प्रतिज्ञा मैं करता हूँ, पाएगा तू मेरा नाम।। 65।।

सब धर्मों को तजकर, अर्जुन ! शरण एक मेरी तू आ।
सब पापों से मुक्त करूंगा, शोक न कुछ मन में तू ला।। 66।।

यह मत कहना तपहीनों से अथवा भक्ति-रहित जन से।
कहना मत निन्दक से, अथवा उससे जो न सुने मन से।। 67।।

परम गुप्त ये बातें जो मम भक्तों को सिखलाएगा।
भक्ति प्राप्त करके वह मेरी, निश्चय मुझको पाएगा।। 68।।

उससे बढ़कर प्यारा मेरा कोई भी है कहीं नहीं।
होगा कभी न जग में कोई उससे प्रियतर मुझे कहीं।। 69।।

हे अर्जुन ! जो पढ़ा करेगा हम दोनों का यह संवाद।
मानूंगा मैं पूजा करता ज्ञान यज्ञ से मेरी तात।। 70।।

दोष दृष्टि बिन जो श्रद्धा से, सुना करेगा यह संवाद।
पाएगा शुभ पुण्यशील के लोक मुक्त होने के बाद।। 71।।

क्या यह सब तूने हे अर्जुन! श्रवण किया है देकर ध्यान।
हुआ विनष्ट मोह क्या तेरा और हटा सारा अज्ञान।। 72।।

अर्जुन उवाच
गया मोह सब, ज्ञान हुआ अब, तव अनुकम्पा से, हे तात!
गतसंशय मैं हुआ, तुम्हारी मानूंगा अब सारी बात।। 73।

संजय उवाच

"वासुदेव अर्जुन का अद्‌भुत औ' रोमांचक यह सम्वाद–
मैंने सुना" – कहा संजय ने कौरवपति से उसके बाद।। 74।।

व्यास–अनुग्रह से ही मैंने गुप्त योग यह श्रवण किया।
योगेश्वर केशव ने जिसका अर्जुन को उपदेश दिया।। 75।।

हे राजन् ! ये अद्‌भुत बातें एक बार सुनने के बाद–
बार बार होता हूँ हर्षित जब–जब आती इनकी याद।। 76।।

श्री हरि का अद्‌भुत स्वरूप वह जब भी याद मुझे आता।
अति विस्मय होता है मुझको, अमित हर्ष मैं हूँ पाता।। 77।।

योगेश्वर हों कृष्ण जहाँ पर और धनुर्धर पार्थ जहाँ।
मेरे मत से श्री, विभूति, जय, अचल नीति भी रहें वहाँ।। 78।।

('श्रीगीतामृत–पदावली' का मोक्ष–संन्यास–योग नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।
।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

● ● ●

(क्रमशः)

स्वरूप की विस्मृति से ही भेदभ्रम की अनुभूति, चित्त - शुद्धि से ही भ्रमनिवारण तथा मोक्ष लाभ का वर्णन

(साभार – योगवाशिष्ठ से)

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं – रघुनन्दन! जिस प्राणी का जिस तरह के कर्मों को योगानुकूल फल जहाँ जैसे रहता है, वहाँ इतना ही वह अनुभव करता है, उससे अतिरिक्त नहीं। एक व्यक्ति के हृदय में विद्यमान जो मनोराज्य है, उसे देखने या भोगने आदि में दूसरे व्यक्ति का मन सफल नहीं होता। यह जो असफलता को प्राप्त हुई मन की स्थिति है, वही उसके विच्छेद यानी नानात्व में हेतु है – यों जानना चाहिए। उस मन के भेद से ही जीवों के भी भेद होते हैं अर्थात् जैसे भिन्न–भिन्न मन हैं, उसी तरह भिन्न–भिन्न जीव भी हैं। जैसे सुवर्ण अपने ज्ञान के अभाव से कड़े–कंगन आदि के रूप को प्राप्त होता है, उसी प्रकार जिसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है, उस चेतन ने स्थूल देह को स्वीकार करके संसाररूपिणी अविद्या का मिथ्या ही अनुभव किया है।

सम्पूर्ण जीव–समूहों का आत्मा स्वयं ही अपने संकल्प से जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीन अवस्थाओं को प्राप्त हुआ है। इन अवस्थाओं में शरीर कारण नहीं है। इस प्रकार जाग्रत आदि तीन अवस्था रूप आत्मा में ही जीवत्व है अर्थात् वह आत्मा ही जीव रूप से स्फुरित हो रहा है; इसमें शरीरत्वका विकास नहीं है। तात्पर्य यह है कि जैसे जल ही लहर एवं भंवर आदि के रूप में विख्यात होता है – यह तात्विक दृष्टि प्राप्त होने पर जल में उससे पृथक् लहर आदि की सत्ता नहीं रहती, इसी प्रकार जीवात्मा ही जाग्रत आदि अवस्थारूप है – यह विचार दृढ़ होते ही जीव से पृथक् देह की वास्तविक सत्ता शेष नहीं रह जाती।

इसी प्रकार तत्वज्ञ पुरुष सुषुप्ति अवस्था के अवसानभूत तुरीय पद रूप सच्चिदानन्दघन परमात्मपद को ज्ञानद्वारा प्राप्त करके संसार से निवृत्त हो जाता है, परंतु जो मूढ़ जीव है वही सृष्टि में प्रवृत्त होता है। ज्ञानी और अज्ञानी दोनों की सुषुप्ति एकरूप ही है; क्योंकि अज्ञ को भी सुषुप्तावस्था में सुख की प्राप्ति होती है। किन्तु अज्ञानी जीव तो सुषुप्तावस्था में पहुँचकर भी असम्बुद्ध (वास्तविक आत्मज्ञान से रहित और देहात्म भाव की भ्रान्ति वासनाओं से वासित) होने के कारण सृष्टि को प्राप्त होता है, परन्तु ज्ञानी नहीं। परब्रह्म परमात्मा निर्विकार होने के कारण स्वभाव नहीं कहा जा सकता। निर्विकार, अद्वितीय और असंग होने के कारण जो वास्तव में किसी का कारण नहीं है, तथापि सम्पूर्ण प्रपंच के आरोप का अधिष्ठान रूप से आदिकारण है, इस निर्विशेष परब्रह्म परमात्मा में वस्तुतः कारण एवं निमित्त आदि वस्तु की भी सम्भावना नहीं है। (अतः ब्रह्म में बिना किसी कारण के ही प्रतीत होने वाला यह जगत् मिथ्या ही है।)

सार वस्तु (ब्रह्म) का ही विचार करना उचित है। असार वस्तु (दृश्य संसार) के विचार से क्या लाभ? बीज अपने स्वरूप का त्याग करके अंकुर आदि के क्रम से फल रूप में परिणत होता देखा जाता है, परंतु ब्रह्म वैसा नहीं है। वह अपने स्वरूप का त्याग किये बिना ही जगत–रूप अध्यारोप का अधिष्ठान रूप से कारण होता है, बीज का अवयव आदि सब कुछ साकार है।

अतः उससे निराकार परम पदरूप ब्रह्म की तुलना करना उचित नहीं। इसलिए कल्याण स्वरूप ब्रह्म के लिये कोई उतना सम्मत ही नहीं हो सकती। अपने को दृश्य रूप में देखने वाला दृष्टा अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा को नहीं देख सकता। (इसलिए उसे अनर्थ की प्राप्ति होती है।)। जिसकी बुद्धि प्रपंच के आक्रान्त हो, ऐसे किसी पुरुष की अपनी यथार्थ स्थिति का ज्ञान नहीं होता।

जब तक भ्रान्ति से मृगतष्णा में जल की प्रतीति हो रही है, तब तक किसी की समझदारी किस काम की, और जब यह ज्ञान हो गया कि यहाँ जल नहीं है, तब वहाँ मृगतृष्णा ही क्या रह गयी? जैसे नेत्र बहिर्मुख होने के कारण अपने आपको नहीं देख पाता, उसी प्रकार आकाश की भांति निर्मल होता हुआ भी द्रष्टा बहिर्मुख होने के कारण अपने स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर सकता। यह भ्रम की प्रबलता कैसी आश्चर्य जनक है। यदि दृश्य–प्रपंच को दृश्यरूप से ही सच्चा समझा जाये तो आकाश के समान निर्मल ब्रह्म यत्न करने पर भी नहीं मिल सकता, फिर तो उसकी प्राप्ति बहुत दूर हो जाती है। श्रीराम ! इसीलिए उसकी दृश्य ही दिखायी देता है, दृष्टा का दर्शन नहीं होता। वास्तव में एकमात्र दृष्टा ही सर्वत्र स्थित है, दृश्य नाम की कोई वस्तु यहाँ है ही नहीं (जो कुछ दिखायी देता है, वह केवल भ्रम है)। जब द्रष्टा और दृश्य में कोई अन्तर ही नहीं रहा, तब कौन द्रष्टा और कैसा दृश्य; क्योंकि वह द्रष्टा ही दृश्य रूप में प्रकट होता है।

जब चित्त सिद्धि को प्राप्त होता है, तब जीव जड़ – संसर्ग से मुक्त हो केवल शुद्धि चिन्मय आत्मस्वरूप से स्थित होता है। वह चेतन आत्मा शुद्ध एवं सर्वव्यापी है; चेतन आत्मा जहाँ जिस वस्तु की भावना करता है, वहाँ वह तत्काल प्रकट हो जाती है। उसने स्वप्न में भी जो कुछ देखा है, वह स्वप्न के समय में सत्य ही है। जैसे बीज के अन्दर सूक्ष्म रूप से पत्ते, लता, फूल और फल स्वरूप अणु रहते हैं उसी प्रकार चेतन रूप अणु के भीतर समस्त सूक्ष्म अनुभव विद्यमान है। जिस पुरुष के भीतर यह विचार नहीं उठता कि मैं कौन हूँ और यह जगत क्या है, वह संसार के बन्धन से मुक्त नहीं हुआ। जिस विशुद्ध बुद्धि वाले पुरुष की भोगलिप्सा प्रतिदिन क्षीण होती जाती है उस वैराग्यवान् का ही विवेकयुक्त विचार सफल हो जाता है। जैसे शरीर के द्वारा पथ्य–भोजन आदि नियमों के साथ सेवन किया हुआ औषध ही आरोग्य प्रदान करता है, उसी प्रकार जितेन्द्रियता का अभ्यास हो जाने पर ही विवेक सफल हो जाता है। चित्र में अंकित प्रज्वलित अग्नि की भाँति जिसका विवेक केवल कथनमात्र ही है, कार्य में परिणत नहीं हुआ है, उसने अविवेक का त्याग नहीं किया है, अतः वह अविवेक उसे दुख ही देने वाला होगा। जैसे स्पर्श से ही वायु की सत्ता का भान होता है, कथन मात्र से नहीं, उसी प्रकार भोगेच्छा के क्षीण होने से ही पुरुष का विवेक जाग्रत होता है। चित्र लिखित अमृत अमृत नहीं है, चित्रलिखित अग्नि अग्नि नहीं है, चित्रलिखित नारी निश्चय ही नारी नहीं है; उसी तरह कथन मात्र का विवेक विवेक नहीं है, वास्तव में अविवेक ही है। विवेक से पहले राग और द्वेष का समूल नाश हो जाता है। तत्पश्चात् विषय भोगों के लिए प्रयत्न सर्वथा क्षीण हो जाता है। जिस पुरुष में विवेक जाग्रत है, वही परम पवित्र है।

● ● ●

महाप्रभु श्री रामलाल जी व शिष्यों प्रशिष्यों द्वारा योग प्रचार

– अवनीश भटनागर, सहारनपुर

भारतवर्ष में अनेक योगी महापुरुषों का पदार्पण समय–समय पर होता आया है जिनमें विलक्षण योग्यतायें रहीं उन्होंने जनकल्याण के लिए अनेक दैवी कार्य किये जो चमत्कार बनकर जगत में प्रसिद्ध हैं उनके चमत्कारों से प्रभावित होकर लोग उनकी ओर आकर्षित होते रहे हैं। इस भावना से कि हमें बिना कुछ जप तप परिश्रम किये ही छप्पर फाड़ पैसा, मान, सम्मान व सुख प्राप्त हो जाये आध्यात्मिकता तो कोई चाहता ही नहीं विरले लोग ही आध्यात्मिक प्यास लेकर चला करते हैं ऐसे लोग क्षणिक एवं नाशवान सुखों के चक्कर में नहीं पड़ा करते वह तो जन्म दर जन्म शुभ कर्म करते–करते सिद्धयोगियों की शरण प्राप्त करके लक्ष्य प्राप्त किया करते हैं।

सिद्ध सिद्धेश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी एवं योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी में विलक्षण से भी विलक्षण बात यह रही कि स्वयं तो सकल योग ऐश्वर्य एवं सर्वशक्तियों से विभूषित थे ही और परमकृपा करके उन्होंने अपने शिष्यों में तीव्र शक्तिपात प्रदान करके उनकी जन्मजन्मान्तरों से सोई कुण्डलनी शक्ति को जाग्रत करके सर्वशक्तिशाली बनाया उन्हें ऋद्धि सिद्धियों का स्वामी बनाया, सकल योग ऐश्वर्य से विभूषित किया और कैवल्य प्राप्त कराकर कुर्तुम अकुर्तुम शक्ति वाला बनाकर अपने समान ही अपने शिष्यों को सामर्थ्यशाली बनाया। यह अति विलक्षण बात केवल श्री रामलाल महाप्रभुजी एवं श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के परम शक्तिशाली रूपक में ही देखने को मिलती है। जबकि अन्य योगी महापुरुषों में संसारी इच्छाओं की पूर्ति, धन दौलत, सुख आदि देने तक ही सीमित रह गये या कुछ दैवी चमत्कार आदि दिखा कर लोगों की भीड़ को आकर्षित करते रहे। सिद्धेश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी ऐसे सिद्ध योगीश्वर है जिन्होंने अपने समान ही अपने शिष्यों को चमकाया। सिद्धेश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी ऐसे पारस सिद्धेश्वर सद्गुरु हैं, जिन्होंने अपने तपोनिष्ठ संस्कारी शिष्यों को पारस ही बना दिया उनके ऐसे पारस शिष्यों के सम्पर्क में आने पर संसार के अनेक संस्कारी भक्त जन सोना (योग्य) बन गये जिनसे पूर्व काल में, वर्तमान में और भविष्यकाल तीनों समय में दिव्य योग ज्ञान की वर्षा हो रही है और होती रहेगी।

योगीश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी के अनेकों योग्य शिष्यों ने जगत में योग प्रचार कार्य किया जिनमें मुख्य चार शिष्य रहे महात्मा ऋषि देवी जी, स्वामी गुलखराज जी, योगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी, योगिनी माता द्रोपदी देवी जी। इन चार शिष्यों में भी दो शिष्यों ने संसार में योग प्रचार कार्य किया इन दो शिष्यों में भी योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने जगत में सिद्धयोग

का भारी प्रचार प्रसार किया। इन्होंने जगत में योग को घर–घर पहुँचाकर सिद्धयोग विद्या को साधारण जीवों तक पहुँचाया।

स्वामी मुलखराज जी ने योग साधन आश्रमों का संचालन किया और योग अभ्यास आश्रम की कनखल हरिद्वार में स्थापना भी की जहाँ से जीवन पर्यन्त योग का प्रचार करके जीवों को योग विद्या की ओर आकर्षित किया। उनके पश्चात उनके शिष्यों में स्वामी देवी दयाल जी, स्वामी रामप्यारा जी, श्री चमन लाल कपूर जी, मदास बोबिली राज महल की महारानी श्रीमति सरस्वती देवी जी। इनके पश्चात् इनके शिष्य श्री श्यामलाल जी कनखल, मदनलाल जी, स्वामी सुरेन्द्रजी, दमयन्ती जी आदि योग के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

योगीश्वर श्री रामलाल जी के योग्यतम परम लाड़ले शिष्य योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपने सद्गुरुदेव की सिद्धयोग मयी परम्परा का संचालन किया। उन्होंने दिव्य शक्तिपात के द्वारा लोगों को योग ध्यान में प्रविष्ट कराकर आत्म साक्षात्कार कराया और उनकी कुण्डलनी शक्ति को जगाकर षटचक्रों का भेदन करते हुए सहस्त्रसार में लीन करके समाधि अवस्था में पहुँचा दिया समाधि की उच्चतम अवस्थाओं को प्रदान करते हुए कैवल्य मोक्ष पद की ओर बढ़ा दिया। प्राणायाम के सभी प्रकार, षटकर्म, अष्टांग योग, क्रियायोग, सिद्धयोग, बज्रोली, सहजोली, अम्रोली, खेचरी, भूचरी, आकाश गमन, शाम्भवी, कायाव्यूह की रचना, दूरदर्शन, दूरश्रवण रूपान्तरण सिद्धि अष्ट सिद्धि, नवी निधि आदि समस्त दिव्य एवं गोपनीय योग साधन स्वयं प्राप्त किये और पात्र जीवों को कराये। अनेक विश्व योग सम्मेलनों में विश्व के अनेक देशों के प्रतिनिधियों ने उनके शक्ति पात चमत्कार देखे हैं जिससे सारे विश्व के योग प्रेमी जिज्ञासुओं में उनका डंका बज उठा। इनके अनेक शिष्यों के प्राण ब्रह्मरन्ध्र भेदकर उत्तम लोकों गमन किये। इनके अनगिनत शिष्य प्रशिष्य आज देश विदेश में इनके सिद्ध योग का प्रचार प्रसार कर रहे हैं। श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई धाम से योग आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज, लखनऊ सिद्धयोग शिक्षण संस्थान से श्री ओम प्रकाश पालीवाल जी, श्री सिद्धगुफा योग आश्रम कुरुक्षेत्र से योगिनी बहन जी उमा शर्मा जी, शान्ती देवी जी योग साधन अमृतसर से, महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के शिष्य टाट बाबा रघुनन्दन प्रसाद जी के शिष्य ब्रह्मचारी प्रेम, सन्तोष, देशमुख हाकिम सिंह बिसनीक आदि फिरोजाबाद सिद्धयोग आश्रम से, श्री हरिभक्त चैतन्य जी के शिष्य जम्मू कश्मीर योग भवन से, ब्रह्मचारी सतीश जी बुलन्दशहर योग आश्रम से ब्रह्मचारी ब्रजमोहन जी बामनी योग आश्रम अलीगढ़ से श्री राममनोहर तिवारी जयपुर योग आश्रम से, शुक्ला जी सहारनपुर योग आश्रम से, वेदराम जी दिल्ली योग आश्रम से आदि–आदि अति संक्षेप में आचार्य लोग योग प्रसार में नित्य क्रिया शील हैं। कुछ महान विभूतियाँ इस क्षेत्र में कार्य करते हुए ब्रह्मलीन हो गये वह है ईश्वरी प्रसाद खड्डर जी झांसी, महात्मा अमीरानन्द सहारनपुर, आचार्य चन्द्रहास जी नई दिल्ली, रामबाबू शर्मा कच्छ गुजरात, हरिभक्त चैतन्य, महात्मा ज्ञानी राम आदि।

सद्गुरु देव महाप्रभु जी चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपने अनेक सद्गृहस्थ बालकों को भी सतसंग एव योग का प्रचार करने की आज्ञायें दी थी इसलिए श्री गुरुदेव भगवान के समय में ही अनेक सतसंग मण्डलों की स्थापना हुई थी जो जब से लेकर अब तक सत्संग एवं योग का प्रचार प्रसार कर रहे हैं। श्री सद्गुरुदेव जी ने अनेक शहरों में जाकर जो योग के ध्वज लहराये थे ये मण्डल उसको भली प्रकार फहरा रहे हैं जैसे झाँसी मण्डल, दतिया मण्डल, सहारनपुर कांगड़ा, मण्डल, कानपुर मण्डल, गंगापुर सिटि मण्डल, भिन्ड मण्डल, सवाई धाम मण्डल मण्डी, कुरुक्षेत्र मण्डल, ग्वालियर मण्डल आदि–आदि संक्षेप में हैं। इन मण्डलों को संचालन करने वालों की शक्लें अलग–अलग हो सकती हैं परन्तु उद्देश्य तो सबका निश्चित रूप से एक ही है 'अपने दाता अपने को बनाने चमकाने वाले सर्वशक्तिमान सच्चे सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का नाम जगत में चमकाना और यह बताना कि जो साधारण वेश में रहकर साधारण से दीखते रहे वे तो असल में साक्षात् ब्रह्म कुर्तुम अकुर्तम शक्ति वाले सर्वशक्तिमान ईश्वर ही हैं और दादा गुरु श्री रामलाल जी से मिलाने वाले भी वही हैं। अगर हमारे और श्री रामलाल महाप्रभु के बीच की कड़ी हमारे गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी न होते तो हम श्री रामलाल महाप्रभु जी को कभी जान ही नहीं पाते और न जाने उनसे दूर हम कहाँ पड़े होते और किस दशा में होते।

• • •

पारस्परिक प्रेम का शत्रु 'अहंकार'

अहंकार चाहे अपने अन्दर हो चाहे दूसरों में उचित नहीं है। इसको ही प्रथम समाप्त करना चाहिए। किन्तु इसे धारण करने वाले से कैसी घृणा? हम किसी के अहंकार से तभी पीड़ित होते हैं जब हमारे अन्दर भी अहंकार की मात्रा होती है। अहंकार रहित लोग ही दूसरों के अहंकार पूर्ण कुतर्क व दुर्व्यवहार को सहर्ष बर्दाश्त करते हैं। हम पहले स्वयं अपने ही अहंकार को नष्ट करने के उपाय करें तत्पश्चात दूसरों में बुराई ढूंढने की चेष्टा करें। हमें किसी की गाली तभी परेशान करती है जब हमारे अन्दर अहंकार की प्रचुर मात्रा होने से सहनशक्ति कम होती है। बड़े लोगों में एक स्वाभाविक दुर्गुण और देखने को मिलता है। ये लोग भ्रमित होकर ऐसा सोचने लग जाते हैं कि हम जो करते हैं, कहते हैं, खाते हैं, पीते बस वही सब कार्य श्रेष्ठ हैं। यदि छोटे लोग इनकी बात को अमान्य कर दें तो ये लोग अहंकार वश, इसे अपना अपमान समझ कर जीवन पर्यन्त अपने हृदय को जलाते रहते हैं।

श्रीमद्भागवत में योग परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

पिछले अंक में श्री नारद जी द्वारा भक्ति के दोनों पुत्रों ज्ञान एवं वैराग्य के जरा–जिर्णता को दूर करने हेतु किये गये उपाय, सफल न होने पर, सनकादि ऋषियों द्वारा भागवत्शास्त्र द्वारा ज्ञान एवं वैराग्य को नवीनता प्राप्त होगा ऐसा आदेश पान पर वे समाधान को चरितार्थ करने हेतु प्रयत्न–रत हुए। प्रथम माहात्म्य के तृतीय अध्याय में तीन स्थानों पर योग चर्चा की गयी है। भागवत सत्र में गंगा किनारे हरिद्वार में ऋषियों, देवताओं तथा साधु पुरुषों का जन समागम हुआ, जिसमें योगेश्वर व्यास जी भी पधारे –

योगेश्वरो व्यासपरासरौ च छायाशुको जाजलि जन्हु मुख्या।

भागवत् पुराण श्रवण, मनन की महत्ता का वर्णन करते हुए सनकादि मुनियों ने नारद जी से कहा – आप बड़े ही बुद्धिमान और योगनिधि हैं। आप प्रयत्न पूर्वक कथा का श्रवण कीजिए।

तेन योगनिधे धीमान् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः।

सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य धारण किये बिना भागवत श्रवण सार्थक नहीं होता। कथा की महत्ता को सर्वोपरि बताने हेतु व्याजोक्ति प्रसंग से कथा को योग तप सभी से बढ़चढ़ कर बताया गया है – देखें –

योगादर्ग्जति सप्राहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति।

किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति।। 52।। *स्क. 1 अ. 3*

भागवत श्रवण योग से बढ़कर है – ध्यान और ज्ञान से बढ़कर है। उपरोक्त व्याज वर्णन सुधी पाठक अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं, सत्यपालन, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय यह सब योग के ही अंग हैं। इनके पालन की अनिवार्यता भागवत श्रवण विधान में अनिवार्य रूप से कहा गया है। महत्ता से सम्बन्धित आत्मदेव ब्राह्मण की कथा रोचक है।

पूर्व काल में तुङ्गभद्रा नदी के तटीय नगर में एक आत्मदेव नाम के ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी का नाम धुन्धुली था। धुन्धुली हठी, मनमानी करने वाली स्त्री थी। स्वभाव से क्रूर तथा गप्पी, निन्दा श्रवण में रुचि रखने वाली थी। इस दम्पति को बहुत समय व्यतीत होने पर भी संतान सुख प्राप्त नहीं हुआ। एक दिन विरक्त भाव से घर से निकलकर, जंगल में आत्मदेव चला गया। वहाँ एक सन्यासी महात्मा ने उसे चिन्तित रोता देखकर पूछा – वत्स! तुम इतने दुःखी क्यों हो। आत्मदेव ने सन्तान हीनता आदि अपने दुःख को स्पष्टता से साधु को प्रणति भाव से बताया।

वे योगनिष्ठ सन्यासी थे उन्होंने आत्म देव का भूत–भविष्यत को जानकर बोले– संतान

प्राप्ति का मोह छोड़ दो। कर्म की गति प्रबल है। सात जन्मों तक तुम्हारे कोई सन्तान का योग नहीं है। आत्मदेव द्वारा अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक याचना करने पर योगी महात्मा ने एक फल दिया और कहा कि सत्य, शौच, दया, दान का पालन एक वर्ष तुम्हारी पत्नी करे तो इस फल के प्रभाव से शुद्ध स्वभाव वाला पुत्र अवश्य प्राप्त होगा।

इस कथा में योग की महत्ता का ही प्रतिपादन किया गया है। महात्मा योगनिष्ठ थे उनमें भूत–भविष्यत जानने का सामर्थ्य था। वे सत्य संकल्प थे।

तद्मालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान।
सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम्।। 33।। *म.अ.4*

परन्तु होनहार बलवान था। पत्नी धुंधली फल न खाकर अपने गाय को खिला दिया। एक वर्ष पश्चात गोकर्ण जी का जन्म गाय से हुआ। इधर धुंधुली छलपूर्वक अपनी बहन को धन देकर उसके नवजात शिशु को अपना पुत्र घोषित करती है। यही धुंधुकारी बड़ा हो कर माता–पिता का हन्ता, अति व्यभिचारी क्रूर कर्मा, वैश्याओं में आसक्त रहने लगता है। अन्त में वैश्याओं द्वारा गला घोट कर मार दिया जाता है। भयंकर ब्रह्म राक्षस का योनि पाकर सबको त्रास देता है। महात्मा गोकर्ण विरक्त भाव से तीर्थों का सेवन करते हुए अनेक वर्षों बाद घर लौटे तो यहां के सभी तथ्यों से अवगत हुए। (रात्रि में धुंधकारी रूपी ब्रह्म राक्षस महात्मा गोकर्ण के सन्मुख प्रकट होकर अपनी व्यथा–कथा कहता है। भगवान सूर्य देव के आदेश से महात्मा गोकर्ण श्री भागवत् कथा आयोजन करते हैं। इस आयोजन के फलस्वरूप ब्रह्मयोनि से छूट कर सद्गति को धुंधुकारी प्राप्त होता है।

महात्मा गोकर्ण योगनिष्ठ थे देखे –

गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः।
न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बान्धवः।। 3/म.अ.5

इसी योग के प्रभाव से कथित कथा–मृत इस कलिकाल के मल का बलात् अपहरण कर मन को एकाग्र कर उच्च योनियों में स्थापित करने वाला सिद्ध होता है।

भक्तावलम्बियों का यह मत है कि योगाचरण करते हुए इष्ट में तदात्मता प्राप्त व्यक्ति के निधन होने पर उसे योग दुर्लभ अपने ईष्ट के लोकों की प्राप्ति होती है। "तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगि दुर्लभम्" श्री प्रभुजी सदैव इस बात पर विशेष जोर देते रहे हैं कि यदि तुम सभी उठते–बैठते–चलते–फिरते अपने मंत्र का चिन्तन करते हुए अनन्य भाव से परम करूणाघन श्री महाप्रभुजी के चरण कमलों का चिंतन करते रहोगे तो वो कल्याण घन श्री प्रभुजी सदैव तुम्हारे सहायक रहेंगे। 'प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छति योगिनः।' महायोगी अपने अनुरक्त भक्तों को सहज उन लोकों में भेज देते हैं जहाँ योगी लोग योग बल से जाते हैं।

भागवत के मूल कथाकार, सनकादि योगी, नारद जी योगी, भगवान वेदव्यास भागवत ग्रंथ रचनाकार योगी और महात्मा शुकदेव जी परम योगी हैं। सदैव सोलह वर्ष की आयु वाले,

योगेश्वर शुकदेव जी ने ही राजा परिक्षित को सात दिनों में भागवत कथामृत पान कराकर, अकाल मृत्यु जो श्राप द्वारा अवश्यम्भावी था उसके पूर्व ही उन्हें श्री कृष्ण भाव–भक्ति बना दिया। वे राजा योग द्वारा समाधि में प्रवेश कर गये। उन्हें अपना देहाभिमान का रंच मात्र भी ज्ञान नहीं रहा। तक्षक नाग श्राप प्रेरित आकर समाधिस्थ राजा के शरीर को अपने तीक्ष्ण विष से भस्मी भूत कर दिया। ऐसे समर्थ सद्गुरु भगवान शुक देव जी को योगेश्वर शब्द से सम्बोधित किया गया है– 'परिव्रगन समायातः शुको योगेश्वरस्तदा।''

भगवान श्री कृष्ण के स्वधाममगमन के पश्चात कलियुग प्रारम्भ हो गया। लगभग तीस वर्षों के पश्चात भगवान शुकदेव जी ने परीक्षित को कथा सुनाई। इसके दो सौ वर्ष पश्चात योगी गोकर्ण ने अपने ब्रह्म राक्षस हुये भाई को सुनाया। लगभग और तीस वर्ष के पश्चात घोर कलि से आक्रांत भक्ति के पुत्रों ज्ञान एवं वैराग्य की पुष्टि हेतु सनकादि ऋषि ने भागवत–कथा कलिकाल में भव रोग भंजन हेतु सुनाया था।

आज चित्त श्रद्धा एवं समर्पण से रहित होता जा रहा है। यह तो मानना ही पड़ता है कि पुरातन काल के ऋषि तत्व वेत्ताओं की तरह सामर्थ्य, अन्तर्मुखिता वाले महापुरुषों की कमी दिखाई पड़ती है। यह शोचनीय है। भौतिक वादी जड़ प्रवृत्तियाँ सामान्यतः हम सभी में दृढ़ मूल हो रही हैं। जिससे थोड़े काल की साधना चिंताओं से संतप्त लोगों को राहत नहीं दे पाता। इन्हीं बातों का स्मरण रखते हुए श्री सद्गुरु देव जी दीक्षा सम्पन्न शिष्यों के परम कल्याणार्थ नारायण स्वरूप श्री महाप्रभु जी की छवि पूजन हेतु देकर, बड़ी श्रद्धा से स्वरूप को स्वयं माथे से लगाकर कहते – लल्ला! स्वरूपों को भली प्रकार आगे–पीछे कॉच लगवाकर मढ़वाना। सुबह–सायं पुष्प, नैवैद्य आदि पूजा–द्रव्यों से अर्चना करना। ऐसा करने से तथा गुरुमंत्र एवं ध्यानाभ्यास करने से उन कृपा निधि जी की भरपूर कृपा का बोध होगा। लोक–परलोक सब तुम्हें परिपूर्णता से प्राप्त होगा।

पुरातन काल में जीवन के विषय में इतना संघर्ष नहीं था। समाज समृद्ध एवं शांत था। अतः जल्द ही श्रद्धा का बीज हृदय में पनप उठता था। आज आध्यात्म भी व्यवसायिकता से आक्रांत हो चला है। निःकाम जीवोद्धार ही शुद्ध कर्मयोग का जनक है परन्तु आज अपवाद के गिने चुनों को छोड़ दिया जाय नहीं तो अधिकांश आध्यात्म को, योग को व्यवसाय बनाकर धन, मान, प्राप्त करने का साधन बना चुके हैं। मन विषय प्रेम को छोड़कर भगवान में, सद्गुरु में, इष्ट में अनुरक्त हो जाय उस हेतु योग कथानक, पुराण गाथा का स्वाध्याय अवश्य सहयोगी है।

श्री सद्गुरु भगवान अपने उद्बोधक उपदेशों में बार–बार युगचक्र, जगचक्र, कालचक्र प्रणेता योगेश्वर श्री कृष्ण जी के चरित्रों को सुनाते रहे हैं। इन सब बातों का तात्पर्य यह था कि योग सिद्धान्तों की पकड़ सर्व सामान्य के पहुँच से दूर थी, इन रोचक कथाओं के माध्यम से योग की महत्ता के साथ–साथ साधक में अपने सद्गुरु देव के अचिन्त्य कृपा शक्ति का बोध भी श्रद्धानुकूल होता है।

● ● ●

आवश्यक सूचना

हम अपने आजीवन सदस्यों को पूर्व में भी सूचना दे चुके हैं कि जिन भाइयों को सदस्य बने पन्द्रह वर्ष से अधिक हो चुका है वे पुनः शुल्क जमा करें, न करने की स्थिति में पत्रिका रोकी जा सकती है। कई गुरुभाइयों ने पूर्व सूचना पर अमल करके अपना शुल्क भेजा है हम उनके आभारी हैं। जो शेष रह गये हैं पुनः प्रार्थना है कि शुल्क तुरन्त भेजें।

निम्न सदस्य हैं जिन्हें शुल्क भेजना है :-

1 सन्तोष कुमार बसी
2 गजराज सिंह
3 डॉ. विजय सिंह
4 केशव उपाध्याय
5 दामोदर प्रसाद ओटवाणी
6 बल्देव कुमार कुकरेजा
7 श्रीमती सुदर्शन कुमारी
8 श्रीमती विद्या कौशल
9 विश्वनाथ दयाल
10 आर.पी. दूबे
11 डॉ. कैलाश नाथ शर्मा
12 आपरेटर रोहतास शर्मा
13 शान्ति हैन्डलूम इन्डस्ट्रीज
14 श्री बृजमोहन वाशिष्ठ
15 खुदबुद ठेकेदार
16 दयालु मुनि
17 जय प्रकाश कसल
18 सत्य प्रकाश गुप्ता
19 के.के. शर्मा
20 नरेन्द्र चौधरी
21 गनेश कुमार
22 विनय सिजरिया
23 अशोक वर्मा
24 रामावतार सुगन्ध
25 विनय कुमार अग्रवाल
26 विधारण्य
27 सज्जन कुमार अग्रवाल
28 अचल चावला
29 प्रो. वी.डी. शर्मा
30 वी.के. सक्सैना
31 मोहन लाल अग्रवाल
32 विवेक बंसल
33 पवन कुमार पुरी
34 विजय पुरी
35 हरीश पठानिया
36 कुलदीप सचदेवा
37 आर.के. शर्मा
38 डॉ. पुष्पराज शर्मा
39 एम.के. कात्रे
40 मान चन्द गुप्ता
41 उमा शंकर गुप्ता
42 साधु राम
43 धर्म सिंह हर्षवर्धन
44 खगेश कुमार
45 सदाशिव मन्दिर
46 नरेश चन्द दास
47 प्रदीप कुमार शर्मा
48 कैलाश चन्द्र सर्राफ
49 रमेश चन्द शर्मा
50 हरे कृष्ण गोस्वामी
51 गुलशन राय पाहूजा
52 अंजू अरोड़ा
53 नरेन्द्र कुमार भारद्वाज
54 प्रतापराय झाऊस
55 एन.आर. यादव
56 प्रदीप कुमार गुप्ता
57 विनय लता
58 भरत कुमार मिश्र
59 जे.एस. गर्ग
60 राज कुमार सूद
61 विशन दास यांजलू
62 अनुपमा काँगड़ा
63 राज दुलारी
64 राकेश बन्धु
65 योगेश शर्मा
66 डॉ. एस. के. शर्मा

अथर्व वेद

ब्रह्मचर्येण तप सा देवा मृत्युमुपाघ्नत्।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्य: स्वरा भरत्।।

ब्रह्मचर्य का पालन और तपस्या करके देव पुरुषों ने मृत्यु को मार भगाया है। ब्रह्मचर्य का पालन कर यह जीवात्मा इन्द्रियों से दुर्लभ सुख को प्राप्त करता है।

विमर्श – जीवात्मा अपने कर्मों का शुभाशुभ फल भोगने के लिए, नाना प्रकार की ***योनियों में बार-बार जन्म लेता है और मरता है।*** मनुष्य योनि में वह फल भोगने के साथ ही नया कर्म भी करता है जबकि इस योनि के अलावा ***अन्य सभी योनियों में जीवात्मा सिर्फ पूर्व कर्मों का फल भोगता है नया कर्म नहीं करता।*** ऐसी दुर्लभ और अत्यन्त उपयोगी मनुष्य योनि का समय, नाना प्रकार के विषयभोग और कुकर्मों को करने में उलझा रह कर, बेकार व्यतीत कर देता है और ***इन कर्मों का फल भोगने के लिए विभिन्न योनियों में भटकता रहता है।*** इस मनुष्य जीवन का सदुपयोग करने, उचित उपभोग करने और अच्छे कर्म पर आत्मोन्नति करने के लिए हमें ब्रह्मचर्य का पालन और व्यायाम का नियमित अभ्यास अवश्य करना चाहिए ताकि हम इस जीवन में लम्बे समय तक स्वस्थ और बलवान बने रह सकें और शुभ कर्म करते रह सकें।

July 2013

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

□□□□□□

शान्तिपाठ

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।।9।।

(मुण्डकोपनिषद्)

वे निर्मल-निर्विकार और अवयवरहित-अखण्ड परमात्मा प्रकाशमय परमधाम में विराजमान हैं; वे सर्वथा विशुद्ध और समस्त प्रकाशयुक्त पदार्थों के भी प्रकाशक हैं तथा उन्हें आत्मज्ञानी महात्माजन ही जानते हैं।

संरक्षामक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय श्लोक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566.

सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दामलाल शर्मा